BPAC-133

केंद्रीय स्तर पर प्रशासनिक प्रणाली

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सी. वी. राघवुल
पूर्व कुलपति, नागार्जुन विश्वविद्यालय
गुंटूर, आंध्र प्रदेश

प्रो. सुधा मोहन
नागरिक व राजनीति विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

प्रो. मंजूशा शर्मा
लोक प्रशासन विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. लालनी हीज़ोवी
लोक प्रशासन विभाग
मिज़ोरम सेन्ट्रल विश्वविद्यालय आइज़ोल

प्रो. रमेश के. अरोड़ा
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. आर. के. सप्रू
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. साहिब सिंह भयाना
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. डी. रवीन्द्र प्रसाद
हैदराबाद

प्रो. जी. पालानीथुराई
राजनीति विज्ञान एवं प्रशासनिक
विकास विभाग, गांधीग्राम रूरल
विश्वविद्यालय, गांधीग्राम

प्रो. बी. बी. गोयल
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ

डॉ. स्विंदर सिंह
प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग
यू.एस.ओ.एल., पंजाब विश्वविद्यालय,
चंडीगढ़

प्रो. निलिमा देशमुख
स्नातकोत्तर लोक प्रशासन व स्थानीय विभाग
आर. टी. महाराज नागपुर विश्वविद्यालय,
नागपुर

प्रो. रवीन्द्र कौर
लोक प्रशासन विभाग उसमानिया
विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रो. राजवीर शर्मा
पूर्व वरिष्ठ सलाहकार
लोक प्रशासन संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. सी. वैंकइया
डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रवीन्द्र के. पाण्डे
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रो. ओ. के. मिनोचा
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन
भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. अरविन्द के. शर्मा
पूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन, गुरूग्राम

इग्नू के संकाय
प्रो. प्रदीप साहनी
प्रो. ई. वायुनंदन
प्रो. उमा मेडूरी
प्रो. अलका धमेजा
प्रो. डॉली मैथ्यू
प्रो. दुर्गेश नन्दिनी

सलाहकार
डॉ. संध्या चोपड़ा
डॉ. ए. सेंथमिल कनल

संयोजक
प्रो. डॉली मैथ्यू

अनुवाद पुनरीक्षक
ज्योति गुप्ता

बी.ए.पी.ए.एच. कार्यक्रम समन्वयक

प्रो. डॉली मैथ्यू
प्रोफेसर, लोक प्रशासन
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

बी.पी.ए.सी. पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. डॉली मैथ्यू
प्रोफेसर, लोक प्रशासन, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई	लेखक
1 से 4, 5(ए), 5(बी), 5(सी), 6 और 7	डॉ. पल्लवी काबड़े, सहायक प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना
5, 8, 9,11	डॉ. स्विंदर सिंह, प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, यू.एस. ओ.एल., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
10, 10(ए), 10(बी), 10(सी), 10(डी)	डॉ. स्विंदर सिंह, प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, यू.एस. ओ.एल., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ज्याति मारवाह, पी. एच.डी. शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।
10 (ई)	सीमा जगपाल
10 (एफ)	डॉ. मीनाक्षी मदान, मुकत्सर
12, 12(ए), 12(बी), 12(सी)	ज्योति मारवाह

आवरण

श्री राकेष कुमार

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री सुरेश कुमार
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

दिसम्बर, 2020

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता, अनुलिपिक या किसी अन्य साधन द्वारा।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बिना किसी लिखित आदेश व पुनः इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कोर्स की सूचना विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी कार्यालय, नई दिल्ली-110068 के द्वारा प्राप्त की जा सकती है अथवा विश्वविद्यालय की वेबसाइट http://www.ignou.ac.in देखें

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर्स

मुद्रित :

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
खंड 1	**भारतीय प्रशासन का विकास**	**7**
इकाई 1	प्राचीनकालीन प्रशासनिक व्यवस्था	9
इकाई 2	मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था	19
इकाई 3	अंग्रेजकालीन प्रशासनिक व्यवस्था	31
इकाई 4	1947 पष्चात् भारतीय प्रषासन में निरतंरता व परिवर्तन	40
खंड 2	**भारत में संसदीय लोकतंत्र**	**45**
इकाई 5	भारतीय संघवाद	47
इकाई 5(क)	व्यवस्थापिका	56
इकाई 5(ख)	कार्यपालिका	67
इकाई 5(ग)	न्यायपालिका	78
खंड 3	**संस्थागत ढाँचा**	**85**
इकाई 6	केबिनेट सचिवालय	87
इकाई 7	केन्द्रीय सचिवालय	94
इकाई 8	अखिल भारतीय सेवा व केन्द्रीय सिविल सेवा	101
इकाई 9	प्रशासनिक प्राधिकरण	112
खंड 4	**आयोग**	**121**
इकाई 10	आयोग	123
इकाई 10(क)	नीति आयोग	125
इकाई 10(ख)	संघ लोक सेवा आयोग	128
इकाई 10(ग)	चुनाव आयोग	130
इकाई 10(घ)	वित्त आयोग	134
इकाई 10(ड.)	केन्द्रीय सर्तकता आयोग	136
इकाई 10(च)	प्रशासनिक सुधार आयोग	139
खंड 5	**नागरिक समाज : अवधारणा व भूमिका**	**145**
इकाई 11	नागरिक समाज : अवधारणा व भूमिका	147
खंड 6	**नियामकिय निकाय**	**155**
इकाई 12	नियामकिय निकाय	157
इकाई 12(क)	भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण	160
इकाई 12(ख)	पेंषन निधि नियामक और विकास प्राधिकरण	162
इकाई 12(ग)	भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण	164

प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य संघ स्तर पर प्रशासनिक प्रणाली से विद्यार्थियों को परिचित कराना है। इसमें विषय वस्तु के साथ कुल छह खंड निर्दिष्ट हैं। प्राचीन काल से प्रशासनिक प्रणाली के विकास के साथ, यह स्वतंत्रता के बाद में भारतीय प्रशासन के निरंतर बदलते स्वरूप से सम्बन्धित है। पाठ्यक्रम में भारतीय संघवाद, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है, जो भारतीय संसदीय लोकतंत्र का एक भाग हैं। यह संस्थागत ढांचे से सम्बन्धित है, जिसमें कैबिनेट सचिवालय, केंद्रीय सचिवालय, अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाओं, प्रशासनिक न्यायाधिकरण पर चर्चा की गई है। नीति, संघ लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, वित्त आयोग, केन्द्रीय सतर्कता आयोग, और लेखा नियन्त्रक और परीक्षक जैसे आयोगों को भी समाहित किया गया है, इसी तरह, ट्राई, पी.एफ.आर.डी.ए., एफ.एस.एस.ए.आई जैसी नियामक एजेंसियों पर चर्चा की जा रही है। पाठ्यक्रम में नागरिक समाज और प्रशासनिक सुधारों के विशय को सम्मिलित किया गया हैं।

प्रथम खण्ड **'भारतीय प्रशासन का विकास'** में प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था, मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, अंग्रेज कालीन प्रशासनिक व्यवस्था और 1947 के पश्चात् भारतीय प्रशासन में निरंतरता और परिवर्तन के साथ काम करने वाली चार इकाइयां शामिल हैं।

दूसरा खण्ड **'भारत में संसदीय लोकतंत्र'** तीन उप–घटकों के साथ भारतीय संघवाद की चर्चा करता हैः विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका।

तीसरा खण्ड **'संस्थागत ढाँचा'** 'की चार इकाइयाँ हैं, कैबिनेट सचिवालय, केंद्रीय सचिवालय, अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाएँ और प्रशासनिक न्यायाधिकरण।

चौथा खण्ड **'आयोग'** नीति, संघ लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, वित्त आयोग, केंद्रीय सतर्कता आयोग और प्रशासनिक सुधार आयोग की भूमिकाओं और कार्यों को समझाते हुए 'आयोगों' से संबंधित है।

पाँचवां खण्ड **'नागरिक समाज : अवधारणा व भूमिका'** 'भारत में नागरिक समाज और नागरिक समाज के कार्यों की अवधारणा से संबंधित है।

छठे खण्ड **'नियामकिय निकाय'** के तीन उप–घटकों हैंः भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण, पेंशन निधि नियामक और विकास प्राधिकरण और भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण। इस ब्लॉक में इन निकायों के विनियामक कार्यों पर चर्चा की गई है।

खंड 1
भारतीय प्रशासन का विकास

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 प्राचीन प्रशासन प्रणाली

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्राचीन भारतीय प्रशासन का विकास

1.3 मौर्य प्रशासनिक प्रणाली

- 1.3.1 केन्द्रीय प्रशासन
- 1.3.2 प्रांतीय प्रशासन
- 1.3.3 स्थानीय प्रशासन
- 1.3.4 राजस्व प्रशासन
- 1.3.5 न्यायिक प्रशासन
- 1.3.6 सैन्य प्रशासन

1.4 गुप्तकाल में प्रशासनिक प्रणाली

- 1.4.1 केन्द्रीय प्रशासन
- 1.4.2 प्रांतीय प्रशासन
- 1.4.3 स्थानीय प्रशासन
- 1.4.4 राजस्व प्रशासन
- 1.4.5 न्यायिक प्रशासन
- 1.4.6 सैन्य प्रशासन
- 1.4.7 व्यापार और व्यवसाय

1.5 सारांश

1.6 संदर्भ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्राचीन भारत में प्रशासन के विकास पर चर्चा कर सकेंगे;
- मौर्य काल में केन्द्रीय, प्रांतीय, स्थानीय, व प्रशासन के अन्य क्षेत्रों की व्याख्या कर सकेंगे;
- गुप्त काल में केंद्रीय, प्रांतीय, स्थानीय, और प्रशासन के अन्य क्षेत्रों का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं कि भारतीय प्रशासन के विकास का इतिहास 5000 साल पुरानी सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़ा है, जिसमें राजा सभी शक्तिशाली हुआ करते थे और राज्य में सभी कार्य राजा के नाम पर किये जाते थे। उसे राज्य पर शासन करने में सहायता के लिए

एक मंत्रियों की परिषद होती थी और साथ ही, अन्य अधिकारी और कार्यकर्ता भी होते थे। दूसरे शब्दों में, प्राचीन काल में, राज्य को प्रशासित करने की शक्तियाँ राजा में केंद्रीकृत थी।

इसके बाद के काल को वैदिक काल के नाम से जाना जाता था। प्रारंभिक वैदिक आर्यों को जनजातियों में संगठित किया जाता था। एक जनजाति के प्रमुख को 'राजन' कहा जाता था। राजन का मुख्य कार्य जनजातियों की सुरक्षा करना होता था। उन्हें पुरोहित (कुलगुरू), सेनानी (सेना प्रमुख), दूत्तास (दूत), और स्पास (जासूस) सहित कई पदाधिकारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी।

हालांकि, प्रशासन का एक व्यवस्थित रूप मौर्य और गुप्त राजवंशों के आने के साथ आया। इन दोनों राजवंशों के पास विस्तृत सरकारी तंत्र थे, जो राज्यों के कार्यों को अत्यधिक संगठित रूप में कार्यान्वित करते थे। यह इकाई इन राजवंशों के दौरान प्रशासनिक प्रणालियों पर चर्चा करती है।

अब हम प्राचीन प्रशासनिक प्रणाली के विकास के बारे में संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

1.2 प्राचीन भारतीय प्रशासन का विकास

वैदिक काल या वैदिक युग (1500–500 ईसा पूर्व) को अपना नाम वेदों[1] से मिला है। प्रारंभिक वैदिक आर्यों को राज्यों के बजाय जनजातियों में संगठित किया गया था। एक जनजाति के प्रमुख को 'राजन' कहा जाता था। राजन का मुख्य कार्य जनजाति की सुरक्षा करना होता था। उसे पुरोहित (कुलगुरू), सेनानी (सेना प्रमुख), दूत्तास (दूत) और स्पाश (जासूस) सहित कई अन्य पदाधिकारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। हालाँकि, राजन की स्वायत्ता 'सभा' और 'समिति' नामक आदिवासी परिषदों द्वारा प्रतिबन्धित होती थी। आर्थर लेवेलिन बाशम[2], एक प्रसिद्ध इतिहासकार और हिन्दुत्ववादी, का कहना था कि सभा जनजाति के महापुरूषों की एक बैठक थी बल्कि समिति सभी मुक्त जनजातियों के पुरूषों की बैठक थी। ये दो निकाय जनजाति को शासित करते थे। उनकी स्वीकृति के बिना राजन सिंहासन पर आसीन नहीं हो सकता था।

बाद में, वैदिक काल में, जनजातियाँ छोटे–छोटे राज्यों में बँट गई, जिसमें एक पूँजी व्यवस्था और एक अर्धविकसित प्रशासनिक व्यवस्था हुआ करती थी। राजन को सामाजिक व्यवस्था का अभिभावक और 'राष्ट्र' (राजनीति) का संरक्षक माना जाता था। वंशानुगत शासन का चलन प्रारम्भ हुआ। इस युग में अनुष्ठानों से राजा के महत्व को बढ़ावा मिला। उन्हें सम्राट के रूप में भी संदर्भित किया जाता था। राजन की बढ़ती हुई राजनीतिक शक्ति के कारण उसे उत्पादक संसाधनों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त हुआ। स्वैच्छित रूप से उपहार देना एक आवश्यक शुल्क बन गया। कराधान की कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी। सभा

[1] जिसकी व्याख्या ऐतिहासिक है तथा इस युग को समझने का प्राथमिक स्रोत है। वैदिक काल या वैदिक युग (1500–500 ई.पू.) उत्तरी भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की वह अवधि है, जो सिंधु घाटी सभ्यता के अंत में तथा इंडो–गैजिटिक मैदान में 600 ई.पू. में प्रारम्भ हुए दूसरी शहरीकरण के बीच का है। वैदिक आर्य 1200–1000 ई.पू. में पूर्वी दिशा की ओर गंगा के उपजाऊ मैदान की ओर फैले ओर जंगल काटने के लिए लोहे के औजारों को अपनाया गया। इस कारण एक व्यवस्थित कृषि जीवन षैली स्थापित हुई। वैदिक काल के उत्तरार्ध कस्बों, राज्यों और एक जटिल सामाजिक विभेदीकरण का उद्भव हुआ।

[2] सचिंद कुमार मैती, 1997 (पृष्ठ 4), प्रोफेसर ए एल बाशम, माई गुरूजी और प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति की समस्याओं और परिप्रेक्ष्य, अभिनव प्रकाषन, भारत।

और समिति अभी भी थे, लेकिन राजन की बढ़ती शक्ति के साथ, उनके प्रभावों में कमी आई। वैदिक युग के अंत तक, विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ जैसे राजशाही (राज्य), कुलीन राज्य (गण या संघ), और आदिवासी सियासतें उभरने लगी।

वैदिक काल में अर्थव्यवस्था ग्रामीण आधारित और कृषि जीवन पद्धति के संयोजन से बनी थी। आर्थिक आदान–प्रदान, विशेष रूप से प्रमुखों और पुजारियों को उपहार देकर किया जाता था। वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित थी, जिसमें मवेशियों को मुद्रा की एक इकाई के रूप में उपयोग में लाया जाता था। वैदिक समाज के अर्द्ध–खनाबदोश जीवन से लेकर बाद के वैदिक युग में कृषि तक के परिवर्तन ने व्यापार और संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की। इस अवधि के अंतर्गत कृषि ने गंगा घाटी में आर्थिक गतिविधियों को लेकर अपना वर्चस्व बनाया हुआ था। कृषि से जुड़े कार्य जटिल होने लगे। लोहे के औजारों के उपयोग में वृद्धि हुई। तांबे, कांस्य, और सोने के अतिरिक्त, वैदिक ग्रंथों में टिन, सीसा, और चाँदी का उल्लेख भी मिलता है। गेहूँ, चावल, और जौ की खेती की जाती थी। नए शिल्प और व्यवसाय जैसे कि बढ़ईगीरी, चमड़े का काम, चरमशोध, कुम्हार का काम, ज्योतिष, आभूषण, रंजक का कार्य, और मदिरा बनाने जैसे कार्य उत्पन्न हुए।

रोमिला थापर ने वैदिक काल के राज्य निर्माण को एक 'अवरूद्ध विकास' के रूप में पाया है, क्योंकि.... प्रमुख गण प्रायः स्वायत्त होते थे और बढ़ती हुई भव्य अनुष्ठानों में वे अधिशेष धन को लगाते थे, जो अन्यथा राज्य निर्माण में लगाया जा सकता था। (बेल्ला, 2011) उपनिषदों की अवधि, जो वैदिक युग का अंतिम चरण था, और जो एक नई लहर के राज्य निर्माण के समकालीन था, उसे गंगा घाटी में शहरीकरण की प्रारम्भ से जोड़ा गया था। जनसंख्या और व्यापार नेटवर्क के विकास ने सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को जन्म दिया जिससे वैदिक काल का अंत और शहरीकरण के लिए नये चरण आरम्भ हुए।

जब मौर्य वंश सत्ता में आया, कौटिल्य का लेख, जो 'अर्थशास्त्र' के नाम से जाना जाता था, वह राज्य कला, आर्थिक नीति, और सैन्य रणनीति के लिए एक लेख बन चुका था। कौटिल्य, तक्षशिला विश्वविद्यालय में एक विद्वान थे और सम्राट चंद्रगुप्त मौर्या के शिक्षक और संरक्षक थे। भारतीय प्रशासन प्रणाली अच्छी तरह से विकसित की गई थी ओर कौटिल्य का ग्रंथ इस बारे में सबसे पहला विस्तृत विवरण देता है।

मौर्य काल भारतीय प्रशासन में प्रमुख विकास का युग था। इस काल में विकेन्द्रीकरण प्रचलित था, क्योंकि जमीनी स्तर पर प्रशासन के आधार के रूप में ग्राम इकाईयों ने इस ओर अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुशल प्रशासन हेतु, प्रान्तों को जिलों और जिलों को ग्रामीण और शहरी स्थानीय केन्द्रों में विभाजित किया गया था।

मौर्य काल में प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन निम्न हैं।

1.3 मौर्य प्रशासनिक प्रणाली

भारतीय इतिहास ने मौर्य साम्राज्य के प्रारम्भ के साथ नए युग में प्रवेश किया क्योंकि यह पहली बार था कि भारत ने राजनीतिक एकता और प्रशासनिक एकरूपता को पाया। मौर्य साम्राज्य को चार प्रांतों में विभाजित किया गया था, जिनमें पूर्व में तोसली, पश्चिम में उज्जैन, दक्षिण में सुवर्णागिरी, और उत्तर में तक्षशिला थे। मौर्य राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

मौर्यों ने प्रशासन की एक संगठित और विस्तृत प्रणाली विकसित की। केन्द्रीय प्रशासन राजा के अधीन होता था। इसके अतिरिक्त प्रांतीय प्रशासन, स्थानीय प्रशासन, राजस्व प्रशासन,

न्यायिक प्रशासन, और सैन्य प्रशासन थे।

अब हम प्रशासनिक प्रणालियों पर चर्चा करेंगे। सबसे पहले, मौर्यों की केन्द्रीय प्रशासन से चर्चा प्रारम्भ करेंगे।

1.3.1 केन्द्रीय प्रशासन

राजा मौर्य प्रशासन का सर्वोच्च और संप्रभु अधिकारी था। उसमें सर्वोच्च कार्यकारी, विधायी, और न्यायिक शक्तियाँ निहित थी। वह अपने राज्य की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी था। वह नीतियों के लिए सामान्य रेखाएं निर्धारित करता था, जिनकी पालना सभी अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा किया जाता था। वह मंत्रियों और शाही प्रशासन के अन्य अधिकारियों को नियुक्त करता था। साथ ही, राजा सेना का प्रमुख सेनापति और सम्पूर्ण सैन्य प्रशासन का शीर्ष हुआ करता था।

मौर्य साम्राज्य (अशोक से पहले) अनिवार्य रूप से एक हिन्दू राज्य था। हिंदू अवधारणा के अनुसार, राज्य का सर्वोच्च प्रभुत्व 'धर्म' या 'कानून' हुआ करता था और राजा को इसका संरक्षक बनाया जाता था। राजा कभी भी कानून की अवहेलना करने का साहस नहीं करता था। उसे एक मंत्रीपरिषद द्वारा सहायता दी जाती थी और साथ ही साथ, सलाह भी दी जाती थी, जो राजा को दिन–प्रतिदिन के प्रशासन के संचालन में निर्देशित किया करता था। आपातकाल के दौरान यह मुख्य रूप से उसका दायित्व बन जाता था। राजा पर ब्राह्मणों का बहुत प्रभाव था और राजा उनकी अवज्ञा कभी भी नहीं कर सकते थे। वह हमेशा उनकी समर्थन की ओर देखते थे। इसके अतिरिक्त चूंकि मौर्य सरकार की शक्तियाँ प्रकृति में विकेंद्रीकृत थी, इसीलिए प्रांतीय राज्यपाल और प्रांतीय मंत्रियों को राजा को सभी प्रान्तीय मामलों में सलाह देने का अधिकार था।

मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की संख्या विविध हुआ करती थी, परन्तु निश्चित नहीं। मंत्रियों को धर्म व धन के मामले में अपनी योग्यता को घोषित करना होता था। आपातकाल के समय में, राजा को मंत्रिपरिषद द्वारा बहुमत से लिए गए निर्णय द्वारा निर्देशित किया जाता था।

इसके अतिरिक्त, नौकरशाही एक सुसंगठित पदानुक्रम में कार्यकारी, न्यायिक, और राजस्व कार्यालयों को संभाला करते थे। संपूर्ण प्रशासन प्रणाली को विभागों में संगठित किया गया था, जिसमें से प्रत्येक की अगुवाई एक अधीक्षक द्वारा की जाती थी। जिसे अध्यक्ष के नाम से जाना जाता था। अध्यक्ष की सहायता के लिए लिपिक, लेखाकार, और गुप्तचर हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त उच्च अधिकारियों के दो पद होते थे जिनके नाम 'समाहर्ता' और 'संनिधाता' था। समाहर्ता पूरे मौर्य साम्राज्य के लिए राजस्व का संग्राहक था। अंततः खर्च वाले भाग पर भी उसका नियंत्रण होता था। संनिधाता का पद कोषागार और भंडार के प्रभारी अधिकारी का था। इसके अतिरिक्त, सेना के मंत्री, मुख्य पुजारी, और किले के संरक्षक जैसे अन्य अधिकारी भी थे।

1.3.2 प्रांतीय प्रशासन

पूरे साम्राज्य को दो भागों में विभाजित किया गया थाः

- वह राज्य, जो राजा के प्रत्यक्ष शासन के अधीन, या
- जागीरदार राज्य

मौर्य साम्राज्य जो राजा द्वारा सीधे शासित था, उसे कई प्रांतों में विभाजित किया गया था जिन्हें 'जनपद' कहा जाता था। अशोक के पास पांच प्रांत थे। उनकी राजधानियाँ थीं

तक्षशिला, उज्जैन, तोसली, सुवर्णगिरी, और पाटलिपुत्र। प्रत्येक प्रान्त को जिलों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक जिले को फिर से इकाईयों में विभाजित किया गया था।

हालांकि इन केन्द्र शासित मौर्य प्रदेशों के अतिरिक्त, जागीरदार राज्य भी थे। उनके पास अत्यधिक स्वायत्ता थी।

प्रांतीय प्रशासन भी केंद्रीय प्रशासन के समान कार्य करता था। मौर्य सम्राट साम्राज्य के मध्य और पूर्वी भागों पर शासन किया करते थे। अन्य क्षेत्रों पर प्रांतीय राज्यपालों का शासन था। प्रांतीय राज्यपाल प्रांतिय प्रशासन के दिन–प्रतिदिन के संचालन के लिए उत्तरदायी थे। उनसे ये अपेक्षा की जाती थी कि वे केन्द्रीय प्रशासन के साथ महत्वपूर्ण मामलों में परामर्ष करेंगे। जिला अधिकारी, रिर्पोटर, लिपिक भी थे, जो प्रांतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में सहायता करते थे।

1.3.3 स्थानीय प्रशासन

'राजुकस' जिला प्रशासन का प्रभारी हुआ करता था, जिसकी स्थिति और कार्य आज के जिला कलेक्टर के समान हुआ करता था। इनको 'युक्तास' या अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। शहरी क्षेत्रों में 30 सदस्यों वाला एक नगरपालिका बोर्ड हुआ करता था। छः समितियाँ बनाई गई थी, जिनमें प्रत्येक में पाँच बोर्ड सदस्य होते थे। यह समितियाँ शहरों के प्रशासन का संचालन करती थीं। समितियाँ निम्नलिखित थीः

1. औद्योगिक कला समिति
2. विदेशी समिति
3. जन्म और मृत्यु के पंजीकरण समिति
4. व्यापार और वाणिज्य समिति
5. निर्माताओं के पर्यवेक्षण समिति
6. उत्पाद और कस्टम शुल्क के संग्रहण समिति

ग्राम प्रशासन 'ग्रामनी' के हाथों में था और उनके श्रेष्ठ को 'गोपा' कहा जाता था, जो दस से पंद्रह गांवों का प्रभारी था। जनगणना एक नियमित गतिविधि हुआ करती थी और गाँव के अधिकारियों को लोगों को उनकी जातियों और व्यवसायों के आधार पर क्रमांकित करना होता था। उन्हें प्रत्येक घर में जानवरों की गिनती भी करनी होती थी। कस्बों में जनगणना नगरपालिका के अधिकारियों द्वारा आयोजित की जाती थी, विशेष रूप से विदेशी और स्वदेशी आबादी दोनों के चलन पर दृष्टि रखने के लिए। ऐसा प्रतीत होता है कि जनगणना मौर्य प्रशासन में एक स्थायी संस्था बन गई थी।

1.3.4 राजस्व प्रशासन

कौटिलय ने राजकोष पर अधिक बल दिया क्योंकि सुचारू और सफलतापूर्वक प्रशासन उस पर निर्भर था। आय के मुख्य स्रोत भूमि राजस्व, कराधान, और किराए थे। भू–राजस्व, जो राजस्व का मुख्य स्रोत था, कुल उपज का 1/6 भाग था, हालाँकि असलियत में एक बहुत ऊँचा व अधिक भाग लिया जाता था। यह अनुपात किसानों की आर्थिक और स्थानीय स्थितियों के अनुसार तय किया जाता था। भू–राजस्व के अतिरिक्त, राजस्व के अन्य स्रोत उत्पाद शुल्क, वन कर, जल कर, खानों पर लगाया गया कर, मुद्रा कर आदि थे। मौर्य राजस्व का अधिकांश भाग सेना के वेतन, शाही सरकार के अधिकारियों, दान, और विभिन्न

सार्वजनिक कार्यों जैसे सिंचाई परियोजना, सड़क निर्माण आदि का भुगतान करने पर खर्च किए जाते थे।

1.3.5 न्यायिक प्रशासन

राजा न्यायपालिका के प्रमुख था। राजा को अपील की सर्वोच्च अदालत माना जाता था और वह लोगों की अपील को व्यक्तिगत रूप से सुनता था। परन्तु, मौर्य साम्राज्य विशाल हुआ करता था राजा के लिए हर मामले को हल करना संभव नहीं था। इसीलिए, उन्होंने इस उद्देश्य से कई न्यायाधीशों की नियुक्ति की। वे सामान्य मामले सुनते थे। हालाँकि अशोक के शासनकाल में, न्यायिक प्रणाली में कई सुधार पेश किए गए थे। उनके शासनकाल में क्षमा प्रदान की जाती थी।

सर्वोच्च न्यायालय राजधानी में स्थित हुआ करता था और मुख्य न्यायाधीश को 'धर्मथिकारिन' कहा जाता था। प्रांतीय राजधानियों और जिले में 'अमात्य' के अधीन अधनीस्थ न्यायालय भी थे। गाँवों और कस्बों में, मामलों का निपटारा क्रमशः 'ग्रामव्रधा' और 'नगरण्यवाहरिकामाहामात्रा' द्वारा किया जाता था।

अपराधियों को जुर्माने, कारावास, उत्पीड़न, और मृत्यु जैसे विभिन्न प्रकार के दंड दिए जाते थे। शहर के सभी प्रमुख स्थानों पर पुलिस स्टेषन पाए जाते थे। कौटिल्य और अशोक दोनों ने जेलों और जेल अधिकारियों के बारे में उल्लेख किया है। इसमें किसी निर्दोश को सजा न देने का प्रावधान था। अशोक ने अधिकारियों के एक विशेष वर्ग की नियुक्ति की, जिन्हें धम्म 'महामात्रा' के रूप में जाना जाता है। अशोक के शिलालेखों पर कुछ सजाओं की माफी का उल्लेख मिलता है।

1.3.6 सैन्य प्रशासन

राजा सेना का सर्वोच्च सेनापति था। मौर्य सेना अच्छी तरह से संगठित थी और यह 'सेनापति' के नियंत्रण में थी। ग्रीक लेखक प्लिनी के अनुसार, मौर्य सेना में छह लाख पैदल सेना, तीस हजार घुड़सवार, नौ हजार हाथी, और आठ हजार रथ थे।

युद्ध से संबंधित मामलों को देखने के लिए 30 सदस्यों का एक मंडल होता था। ये सदस्य छह समितियों में पाँच सदस्यों के रूप में प्रत्येक में रखे गए थे। ये समितियाँ सेना के निम्नलिखित खण्डों का प्रबंधन करने के लिए उत्तरदायी थी।

1. नौसेना
2. परिवहन और आपूर्ति
3. पैदल सेना
4. घुड़सवार सेना
5. युद्ध रथ
6. युद्ध के हाथी

प्रत्येक खण्ड अध्यक्ष या निरिक्षक के अधीन होता था।

मौर्य साम्राज्य को चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और अशोक जैसे सफल प्रशासक होने का विशेषाधिकार प्राप्त था। साम्राज्य का प्रशासन विकेंद्रीकृत था और प्रशासनिक शक्तियों को प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित किया गया था। हालाँकि, ये इकाईयाँ कठोर केंद्रीय नियंत्रण में थी।

अशोक ने मौर्य प्रशासनिक प्रणाली में नवाचारों और सुधारों को प्रारम्भ किया। उन्होंने कार्यकारी, विधायिका, और न्यायपालिका के कामकाज में सुधार किया। उन्होंने प्रांतीय प्रशासन में सुधारों को आरम्भ किया। उन्होंने लोक कल्याण के कार्यों को देखने के लिए कई अधिकारियों को नियुक्त किया। अशोक ने अधिकारियों के एक विशेष वर्ग की नियुक्ती की, जिन्हें धम्म महामात्रा के रूप में लोगों को सामग्री और उनके आध्यात्मिक कल्याण की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। ये व्यक्ति धम्म के सुसमाचार का प्रसार करते थे।

गतिविधि

आइए हम मौर्य प्रशासनिक प्रणाली और आज के समकालीन प्रशासन के बीच समानता और अंतर पर आपके विचार बिंदुओं के बारे में जानें।

1.4 गुप्तकाल में प्रशासनिक प्रणाली

गुप्तवंश में प्रशासनिक व्यवस्था मौर्य साम्राज्य के समान ही थी। गुप्त शासन के समय, प्राचीन भारत में राजनीतिक सद्भाव था। इस अवधि में साम्राज्य को राज्य, राष्ट्र, देश, और मंडल के जैसे प्रशासनिक प्रभागों में वर्गीकृत किया गया था। इस प्रकार यह प्रशासनिक विकेद्रीकरण के महत्व को दर्शाता है। प्रशासनिक प्रभागों ने शासकों को अपने क्षेत्रों को व्यवस्थित रूप से नियंत्रित करने में सहायता की। गुप्त काल की अवधि को प्रचीन भारत का स्वर्ण युग के रूप में वर्णित किया गया है। एक राजनीतिक छत्र के नीचे उत्तर भारत का एकीकरण हुआ जिस कारण क्रमबद्ध विकास और वृद्धि के युग का प्रारम्भ हुआ।

हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत गुप्त प्रशासन पर चर्चा करेंगे।

1.4.1 केंद्रीय प्रशासन

गुप्तकाल में सरकार का रूप राजशाही था परन्तु एक उदार राजशाही के रूप में इसका स्वागत किया जाता था। राजा को परमेश्वर, महाराजाधिराज और परमभद्राका जैसे उपाधियों से अलंकृत किया जाता था। वह सर्वोच्च अधिकारी था और उसके पास साम्राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए व्यापक शक्तियाँ होती थी। उन्हें राजनीतिक, प्रशासनिक, सैन्य, और न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त थी। इस समय में राजा को दिव्य शक्ति के रूप में देखा जाता था, जिससे उनकी प्रतिश्ठा और शक्ति में वृद्धि हुई। उन्हें भगवान के रूप में देखा जाता था। हालाँकि, राजा के पास व्यापक शक्तियाँ थी, परन्तु वह अत्याचारी रूप से शासन नहीं कर सकता था। मंत्रिपरिषद और कई अन्य अधिकारी राजा के दिन–प्रतिदिन के कर्तव्यों के पालन के लिए सहायता प्रदान करते थे।

गुप्त राजाओं ने सभी राज्यपालों और सैन्य और नागरिक अधिकारियों को नियुक्त किया और ये सभी राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे। राजा ही सारे सम्मान और उपाधियाँ दिया करते थे। राजा साम्राज्य में सर्व भूमि संरक्षक थे। उन्होंने बांधों के निर्माण, न्याय प्रदान करने, करों की वसूली, और आवश्यकतामंदों को आश्रय देने जैसे कार्यों को देखा। राजा कभी भी स्वार्थी या देशद्रोही नहीं बन सकते थे। राज्य धर्म के अनुसार ही उन्हें शासन करना होता था। उनकी सलाह और सहायता के लिए मंत्री और उच्च अधिकारी भी होते थे और राजा उनके साथ शक्तियों का साझा करते थे। सम्राट को मंत्रिपरिषद द्वारा सहायता प्राप्त होती थी। राज्य के प्रधानमंत्री जिन्हें मंत्री मुखिया कहा जाता था, परिषद के प्रमुख थे। अन्य मामलों जैसे कि सैन्य मामलों, कानून और व्यवस्था के मामलों, और ऐसे अन्य मामलों को अलग–अलग अधिकारियों द्वारा संभाला जाता था। जिनमें महासंधि, विग्रहका, अमात्य, महाबालादिकृता और महादंडनायक होते थे। राजा और उनके मंत्रियों की संयुक्त बैठक में

सभी महत्वपूर्ण मामलों का निर्णय लिया जाता था। राजा अपने मंत्रियों द्वारा दी गयी राय का सम्मान करते थे।

एक उदार सम्राट होने के नाते, राजा अपनी प्रजा की भलाई के लिए हर समय अग्रसर रहता था। लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन से स्वयं को जागरूक रखने के लिए राजा देश का भ्रमण किया करते थे।

1.4.2 प्रांतीय प्रशासन

गुप्तों ने प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन की प्रणाली को आयोजित किया। साम्राज्य को 'भुक्त' नामक विभागों में विभाजित किया था और प्रत्येक 'भुक्ति' को एक 'उपारिका' के अंतर्गत रखा जाता था। भुक्तियों को जिलों या विशाया में विभाजित किया गया था। एक विशाया 'विशायापति' के अंतर्गत होता था। विशायापति आमतौर पर शाही परिवार का सदस्य होता था। उन्हें कार्य में कार्यपरिषद् के प्रतिनिधियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी।

1.4.3 स्थानीय प्रशासन

शहर एक परिषद द्वारा शासित था और इसके प्रमुख को 'नगर रक्षक' के रूप में माना जाना था। 'पुरपाल उपारिका' एक अन्य अधिकारी था और नगर–रक्षक उसके अधीन होता था। इसके अतिरिक्त एक अन्य अधिकारी भी था जिसे 'अवस्थिका' के रूप में जाना जाता था, जो धर्मषालाओं के अधीक्षक के रूप में कार्य करता था।

पेशेवर निकायों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया था। कारीगरों, व्यापारियों, और बैंकरों ने अपने स्वयं के संघ (गिल्ड) बनाए थे और वह मामलों का स्वयं ही प्रबंधन किया करते थे। संघ के व्यापारी शहरों में व्यापार को देखते थे।

गाँव, प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्रामिका गाँव का मुखिया होता था। अन्य अधिकारी, जैसे दूत, दुर्ग प्रमुख, और करत्री भी होते थे। ग्राम सभा के द्वारा ग्रामिका की सहायता की जाती थी। गुप्तकाल में, ग्रामीण निकाय जैसे पंचायत ग्रामीणों के कल्याण के प्रभारी होते थे। इन ग्रामीण निकायों में गाँवों के मुखिया और बुजुर्ग सम्मिलित होते थे। इसीलिए, यह माना जा सकता है कि गुप्त काल में ने प्रशासन के सभी स्तरों पर स्थानीय भागीदारी को बढ़ावा मिला।

1.4.4 राजस्व प्रशासन

राजस्व प्रशासन के कर्तव्यों को विनियुकतका, राजुका, उपारिका, दशपराधिका, और ऐसे अन्य अधिकारीगण द्वारा किया जाता था। राजस्व के 18 स्रोतों में से, भू–राजस्व मुख्य स्रोत था। यह आम तौर पर कुल उपज के एक–छठे हिस्से पर तय किया जाता था। इसके अतिरिक्त, भूमि का पुनर्ग्रहण आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत था। उत्पन्न राजस्व का बड़ा भाग लोक कल्याण पर खर्च किया जाता था।

खेती करने वालों पर भूमि कर लगाया जाता था, जिनके पास कोई भूमि अधिकार नहीं था। यह कुल उपज का छठा हिस्सा होता था। आय के अन्य स्रोत भी थे, जैसे कि आयकर, जिसे 'भागा' के नाम से भी जाना जाता था। साथ ही, सीमा शुल्क, टकसाल शुल्क, वंशानुक्रम कर, और उपहार कर भी थे। इन करों के अतिरिक्त, दसापराधा जैसे कर होते थे, जो अपराधियों पर लगाये जाते थे।

वेतन का भुगतान आमतौर पर भूमि अनुदान (नकद के बदले) के रूप में किया जाता था।

ऐसे भूमि अनुदानों ने लाभार्थियों को भूमि पर वंशानुगत अधिकार दिया। हालांकि, राजा के पास जमीन वापस लेने की शक्ति थी। ब्राह्मणों को दी गई भूमि पर कोई कर नहीं लगाया जाता था।

अपशिष्ट भूमि को खेती के अंतर्गत लाया जाता था और चारागाह भूमि को संरक्षित किया जाता था। गुप्त शासकों ने सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाया और इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

1.4.5 न्यायिक प्रशासन

पहले की तुलना में गुप्तकाल की न्यायिक प्रणाली कहीं अधिक विकसित थी। इस अवधि में कानून पर कई पुस्तकों का संकलन किया गया और पहली बार नागरिक और आपराधिक कानूनों का स्पष्ट रूप से सीमांकन किया गया। विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति से सम्बन्धित विवाद नागरिक कानून के अंतर्गत आते थे और चोरी और व्यभिचार आपराधिक कानूनों के अंतर्गत आते थे। विरासत के संबंध में विस्तृत कानून बनाये गये थे।

यह राजा का कार्य था कि वह कानून को बनाये रखे और ब्राह्मण, पुजारियों, न्यायाधीशों और मंत्रियों की मदद से कानूनी मामलों का निपटारा करे। अदालत का निर्णय कानूनी ग्रंथों, उस समय के प्रचलित सामाजिक रीति–रिवाजों तथा राजा के विवेक पर आधारित था। अपील करने के लिए राजा सर्वोच्च न्यायालय हुआ करता था। कारीगरों, व्यापारियों, और अन्य लोगों के संघ उनके अपने कानूनों द्वारा शासित थे।

न्यायिक प्रणाली के सबसे निचले स्तर पर ग्राम सभा थी। ये सभा अपने सामने आने वाले पक्षों के बीच विवादों को निपटाने के लिए कार्य करते थे। ऐसा माना जाता है कि दोशी व्यक्तियों को कड़ी सजाएँ नहीं दी जाती थी।

1.4.6 सैन्य प्रशासन

गुप्त शासकों के पास एक विशाल सेना थी। इन्होंने एक स्थायी सेना बनाए रखी और उस समय घुड़सवार सेना और घोड़े के तीरंदाजी का उपयोग प्रचलन में था। साम्राज्य के क्षेत्रों पर तीखी नज़र रखी जाती थी। शिलालेखों में संदर्भित प्रमुख सैन्य अधिकारी सेनापति, महासेनापति, बालाधिकृत, महाबालाधिकृत, दंडनायका, संधिविग्रहिका, और महासन्धिविग्रहिका थे। सेना के पास सूचना भाग, घुड़सवार भाग, हाथी भाग और नौसेना भाग जैसे चार स्कंध थे। युद्ध के मुख्य हथियार धनुश और तीर, तलवार, कुल्हाड़ी, और भाले थे।

1.4.7 व्यापार और व्यवसाय

इस साम्राज्य ने चीन, सीलोन, कई यूरोपीय देशों, और पूर्व भारतीय द्वीपों जैसे देशों के साथ व्यापार गतिविधियों को प्रारम्भ किया। इससे साम्राज्य आर्थिक और सामाजिक रूप से सुदृढ़ हो गया, जिसके कारण नए राज्यों को अपने राज्य के साथ मिलाया गया, जिससे साम्राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं का विस्तार हुआ।

गतिविधि

आइए, गुप्तकालीन और समकालीन प्रशासन की प्रशासनिक प्रणाली की समानता और अंतर पर आपके विचार बिन्दुओं के बारे में जाने।

1.5 सारांश

उपरोक्त खण्डों में मौर्य प्रशासन और गुप्त प्रशासन के बारे में उल्लेख किया गया है। ये आज के समकालीन प्रशासन की दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाऐं हैं। इन खण्डों में दोनों साम्राज्य के सम्बन्ध में केंद्रीय, प्रांतीय, राजस्व, वित्तीय, न्यायिक, और स्थानीय प्रशासनिक प्रणालियों के विवरण को समझाया गया है। इससे पता चलता है कि दोनों प्रशासनिक प्रणालियाँ राजतंत्रात्मक थी, लेकिन निरंकुश नहीं थी। राजा एक परोपकारी सम्राट हुआ करते थे, जो अपनी प्रजा के कल्याण के लिए चिन्तित थे। दोनों ही प्रशासन प्रशासनिक व्यवस्था की नींव थे और हमारे वर्तमान के प्रशासन के लिए एक सकारात्मक संकेतक सिद्ध हुए।

1.6 संदर्भ लेख

Arora, R.K., 1996, Indian Public Administration Institutions and Issues, second edition, Wishwa Prakashan, New Delhi

Basham, A.L., 1997, My Guruji and Problems and Perspectives of Ancient Indian History and Culture, Abhinav Publications, India

Bellah, 2011, citing the terminology of Brance Trigger, Understand Early Civilizations, http:/en.wikipedia.org/wiki/vedic_period

Maheswari, S.R., 2001, Indian Administration, Orient Longman, New Delhi

Maity Sachindra Kumar, 1975, The Imperial Guptas and Their Times, CIR. AD 300-550, M. M. Publishers, N. Delhi

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 2 मध्यकालीन प्रशासन प्रणाली

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मध्यकालीन भारत में राजनीतिक जीवन

2.3 मुगल प्रशासन

2.3.1 राजा की भूमिका

2.4 मुगल प्रशासनिक व्यवस्था

2.4.1 केन्द्रीय प्रशासन

2.4.2 प्रांतीय प्रशासन

2.4.3 जिला और स्थानीय प्रशासन

2.5 राजस्व प्रशासन

2.6 न्यायिक प्रशासन

2.6.1 दीवानी (सिविल) न्याय प्रशासन

2.6.2 फौजदारी (क्रिमिनल) न्याय प्रशासन

2.7 सेना और पुलिस

2.7.1 सेना

2.7.2 पुलिस

2.8 सारांश

2.9 संदर्भ लेख

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगेः

- मुगल प्रशासन में राजा की भूमिका को समझ सकेंगे;
- मुगल प्रशासन की संरचनाओं को समझ सकेंगे;
- मुगल प्रशासनिक प्रणाली में राजस्व और न्यायिक प्रशासन के बारे में समझ सकेंगे।
- मुगल प्रशासन में नौकरशाही, सेना और पुलिस के बारे में समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत, प्राचीन भारत और आधुनिक भारत के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की एक लंबी अवधि है। 6वीं से 13वीं शताब्दी की अवधि को पूर्व मध्यकालीन युग के रूप में जाना जाता है और 13वीं से 16वीं शताब्दी की अवधि को आधुनिक मध्यकालीन युग के रूप में जाना जाता है। मुगल साम्राज्य, जिसकी स्थापना भारत में 1526 ई. में हुई थी, को प्रायः आधुनिक मध्यकालीन युग के अन्त तथा प्रारम्भिक आधुनिक युग से संदर्भित किया गया है।

इस इकाई में, हम मुगलकाल के राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणालियों की व्याख्या करेंगे।

2.2 मध्यकालीन भारत में राजनीतिक जीवन

8वीं से 12वीं शताब्दी तक भारत के राजनीतिक जीवन में बड़ी संख्या में राज्यों की प्रधानता थी। बड़े राज्यों ने उत्तरी भारत और दक्कन में अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया। वर्चस्व के इस संघर्ष में मुख्य दावेदार प्रतिहार, पाला, और राष्ट्रकूट थे। दक्षिण में, इस अवधि के दौरान उभरने वाला सबसे शक्तिशाली राज्य चोला का था। चोला ने देश में राजनीतिक एकीकरण किया। उत्तर भारत का चित्र राजनीतिक विखंडन का था और इसी अवधि के दौरान भारत का एक नए धर्म इस्लाम के साथ संपर्क प्रारम्भ हुआ। यह संपर्क 7वीं शताब्दी के अन्त में अरब व्यापारियों के माध्यम से हुआ था।

8वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अरबों ने सिंध पर विजय प्राप्त की थी। 10वीं शताब्दी में तुर्क, मध्य और पश्चिम एशिया में एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उभर कर आये और परशिया पर विजय प्राप्त की। उनका जीवन परशिया संस्कृति और परंपरा से अत्यधिक रूप से प्रभावित हुआ। 10वीं शताब्दी के अंत में, तुर्क ने भारत पर आक्रमण किया और पंजाब पर अधिकार कर लिया। इसके बाद 12वीं शताब्दी के अंत और 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अधिक तुर्की आक्रमण हुए, जिसने अंततः सल्तनत राजवंश की स्थापना की। कुछ शताब्दियों के भीतर ही, जब अरब में इस्लाम का उदय हुआ ही था, यह धर्म भारत के हर हिस्से में अपने अनुयायियों के साथ देश का सबसे बड़ा दूसरा धर्म बन गया।

सल्तनत की स्थापना ने मध्यकालीन भारत के इतिहास में एक नए चरण को प्रारम्भ किया। राजनीतिक रूप से, इसके कारण लगभग एक सदी तक उत्तरी भारत और दक्कन के कुछ हिस्सों का एकीकरण हुआ। 14वीं शताब्दी के अंत में सल्तनत राजवंश के विघटन से देश के विभिन्न भागों में कई नए राज्यों का जन्म हुआ। इनमें से कुछ राज्य जैसे बहमनी और विजयनगर बहुत शक्तिशाली बन गए। तुर्क, फारसी, मंगोल, अफगान, और अरब- भारत में नए सामाजिक समूहों के रूप में बस गए। आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। व्यापार और शिल्प को प्रोत्साहन मिला और इसी कारण से कई नए शहरों का व्यापार व शिल्प के केन्द्रों के रूप में जन्म हुआ।

2.3 मुगल प्रशासन

मुगल साम्राज्य, जिसकी स्थापना 1526 ई. में भारत में हुई थी, को प्रायः आधुनिक मध्यकालीन युग के अंत और प्रारम्भिक आधुनिक युग के साथ संदर्भित किया जाता है। मुगल प्रशासन सबसे संगठित और दीर्घकालीन माना जाता है, यहाँ तक कि आधुनिक समय में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। इस स्थिरता का कारण मुगल सल्तनत का लंबे समय तक चलने वाला शासन था, जो लगभग तीन शताब्दियों से भी अधिक का था।

अकबर इस प्रशासनिक प्रणाली के वास्तुकार थे। मुगल प्रशासन ने मौर्य शासकों के राजनीतिक और प्रशासनिक जीवन में प्रचलित बहुत सी परंपराओं को आगे बढ़ाया। लेकिन, मौर्य शासकों की तुलना में, इन्होंने अधिक ध्यान केंद्रीयकरण और एक कठोर संरचना पर किया, जबकि सार्वजनिक जीवन में स्वास्थ्य और सार्वजनिक नैतिकता जैसे सामाजिक पहलुओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया, जो मौर्य राजाओं के लिए विशेष चिंता के विषय थे। सरकार के कामकाज को नियंत्रित करने वाले सिद्धान्तों को बनाये रखने से लेकर कराधान के नियम, विभागीय व्यवस्थाएँ, और अधिकारियों को दी गई उपाधियाँ सभी ईरान और मिस्त्र

के खलीफेट[1] से आयात किए गए थे। इस तरह एक इस्लामिक राज्य का उदय हुआ। मुगलों ने अखण्ड शासन व्यवस्था का निर्माण किया। सभी मुगल सम्राट शक्तिशाली थे और प्रशासन अधिक केंद्रीकृत हो गया था। राजा, राज्य का प्रतीक था और सभी अधिकार और शक्ति का स्रोत और केन्द्र था। प्रांतीय[2] सरकारें प्रशासनिक संस्थाओं की तरह से कार्य करती थीं।

मुगलों की एक कुशल सिविल सेवा थी। उन्होंने गुण को मान्यता देते हुए हिन्दू बुद्धिजीवियों को उच्च सिविल पदों पर लगाया। यह एक अत्यधिक शहरीकृत संस्था थी। नौकरशाही में भर्ती निकट सम्बन्धियों, वंश परम्परा, और राजा के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के सिद्धांतों पर आधारित थी। अधिकारीगण के कार्य मुख्य रूप से कानून-व्यवस्था का रख-रखाव, आंतरिक बगावत और विद्रोह से राजा के हितों की रक्षा, साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार, और राजस्व तथा करों का संग्रहण था।

2.3.1 राजा की भूमिका

डा0 जे.एन.सरकार के अनुसार, मुगल प्रशासन का उल्लेख ''भारतीय व्यवस्था में फारसी-अरबी प्रणाली'' में किया गया है। राजा एक संप्रभु था, जिसका शासन पैतृकता के रूप में था। अधिकारियों का मुख्य कार्य राज्य में कानून व्यवस्था बनाये रखना, आंतरिक बगावत और विद्रोह से राजा के हितों की रक्षा करना, राज्य की सीमाओं का बचाव और विस्तार करना, और राजस्व को एकत्र करना था।

समस्त प्रशासनिक तंत्र राजा के चारों ओर घूमता था और प्रजा की भलाई पर केन्द्रीत था। उस समय, जो सिद्धान्त माना जाता था, वह था कि निरंकुश राजतंत्र दैवीक अधिकार पर आधारित है। जनता के लिए राजा ही सबकुछ था। वह सर्व-शक्तिमान और सर्वोपरि था। सभी अधिकार उसके हाथ में होते थे तथा वही न्याय का स्त्रोत होता था।

पहला मुगल शासक बाबर युद्ध में इतना तल्लीन था कि वह प्रशासन तंत्र में सुधार लाने में अधिक समय नहीं दे पाया। हुमायूँ के साथ भी ऐसा ही हुआ। शेरशाह सूरी, जिसने थोड़े समय के लिए शासन किया था, ने कुछ प्रशासनिक सुधार प्रारम्भ किए, जो भविष्य के शासकों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुए। मुगल सम्राटों की कुछ परंपराओं और प्रथाओं के कारण उन्हें लोगों ने पसंद किया। राजा की प्रजा की ओर पहुँच थी और राजा प्रजा के जीवन से स्वयं को अवगत कराने के लिए राज्य का भ्रमण करता था।

मुगल प्रशासन बड़ी मात्रा में बादशाह अकबर की रचना थी और उसके बाद उसके दो उत्तराधिकारी सम्राट जहाँगीर और सम्राट शाहजहाँ भी इसी तरह से थे। हालाँकि, औरंगजेब ने प्रशासनिक प्रणाली में संशोधन किए और प्रतिक्रियावादी नीतियाँ अपनाई। मुगल प्रशासन तब तक रहा, जब तक कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र में प्रवेश किया और अधिकारों को अपने हाथों में ले लिया।

आगामी भाग में, हम केंद्रीय प्रशासन, प्रांतीय प्रशासन, और जिला व स्थानीय प्रशासन के स्तरों पर संपूर्ण मुगल प्रशासनिक प्रणाली पर चर्चा करेंगे।

हम केंद्रीय प्रशासन की चर्चा के साथ आरम्भ करेंगे।

---

[1] खलीफा, पैगम्बर मोहम्मद के राजनीतिक व धार्मिक उत्तराधिकारी थे। ये सम्पूर्ण मुस्लिम समुदाय के नेता माने जाते थे। ऐतिहासिक रूप में, खलीफेट, इस्लाम पर आधारित राजतन्त्र थे, जो समय रहते बहु–जातीय ट्रांस–नेशनल साम्राज्य में विकसित हो गए थे।

[2] प्रांत को 'सुभा' के नाम से भी जाना जाता है।

2.4 मुगल प्रशासनिक व्यवस्था

2.4.1 केंद्रीय प्रशासन

राजा के पास कार्यों के निष्पादन हेतु, सलाह और सहायता के लिए कई मंत्री होते थे। उनमें से चार प्रमुख थे, जैसे 'दीवान', जो राजस्व और वित्त के प्रभारी थे; 'मीर बख्शी', सैन्य विभाग के प्रमुख थे; 'मीर समन', जो कारखानों के प्रभारी थे; और 'सद्र-उस-सुधर', धर्म और न्यायिक विभाग के प्रमुख थे। हालाँकि, राजा देश के लिए कानून बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र था, लेकिन वह कुरान के कानून के अंतर्गत ही हो सकता था।

अब हम उपरोक्त चार मंत्रियों के बारे में चर्चा करेंगे। प्रारम्भ करते हैं दीवान से।

1. दीवान

मुगल शासकों की सहायता के लिए मंत्री परिषद नहीं होती थी। राज्य के प्रशासन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए एक दीवान होता था, जो इस ओर सुल्तान की सहायता करता था। दीवान आम तौर पर राजस्व विभाग को संभालता था तथा औपचारिक अवसरों पर राजा का प्रतिनिधित्व भी किया करता था। दीवान-ए-तन और दीवान-ए-खल्सन दीवान को सहायता प्रदान करते थे। अबुल फजल के अनुसार, दीवान राजकीय राजकोष की देखभाल करता था और साम्राज्य की आय-व्यय का निरिक्षण भी करता था। पूरी राजस्व प्रणाली उसके नियंत्रण में होती थी। वह नए अधिग्रहीत क्षेत्रों के राजस्व को निर्धारित करता था और कमी होने पर उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करता था। युद्ध के समय सेना की गतिविधियों के कारण किसानों को हुई क्षति की पूर्ति जैसे मामलों का निर्णय भी दीवान करता था। यद्यपि, दीवान एक नागरिक असैनिक हुआ करता था पर आपातकाल के समय वह सैन्य कर्तव्यों का पालन भी किया करता था। इस प्रकार हम पाते हैं कि अधिकांश महत्वपूर्ण मामले दीवान के हाथों में थे।

मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के रूप में, दीवान सभी प्रांतों और उनके अधिकारियों पर नियंत्रण रखता था। राज्यपाल से लेकर पटवारी तक सभी अधिकारियों की गतिविधियाँ लगातार इस की निगरानी में थी। प्रांतीय गवर्नर अपने प्रांत के राजस्व से सम्बन्धित खाते दीवान को ही भेजते थे। वह सड़कों, भवनों, पार्कों और इस तरह के अन्य निर्माण के लिए आवश्यक धन भी उपलब्ध कराता था। एक प्रांत से दूसरे प्रांत में धन के हस्तांतरण के लिए भी वह आवश्यक व्यवस्था करता था। इस प्रकार हम पाते हैं कि दीवान के पास व्यापक शक्तियाँ थी और सम्राटों द्वारा भी महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सलाह ली जाती थी। दीवान को एक बेहतर पारिश्रामिक भी दिया जाता था।

2. मीर बख्शी

मीर बख्शी के पद पर एक मंत्री हुआ करता था, जो पूरी सेना का सेनापति होता था। वह सैन्य मामलों में राजा के मुख्य सलाहकार के रूप में कार्य करता था। मनसबदार[3] से संबंधित सभी रिकार्ड भी मीर बख्शी ही रखता था। सेना में भर्ती, अच्छी तरह से सैनिकों का रखरखाव, सैन्य युद्ध परीक्षण, घोड़ों का निरिक्षण, सैनिकों के हाजिरी रजिस्टर का रखरखाव, और उन्हें लड़ाई के लिए तैयार करना इसके मुख्य कार्य थे। उसे युद्ध की रणनीति भी तैयार करनी होती थी।

[3] मनसबदार अर्थात् वह व्यक्ति जिसके अधिकार में एक मनसब होता था यानि पद या श्रेणी। यह मुगलों द्वारा अपनाई गई श्रेणीकृत व्यवस्था थी, जिसके अंतर्गत श्रेणी, पंक्ति, व सैन्य उत्तरदायित्वों को निर्धारित किया गया था। मनसबदार सैन्य उत्तरदायित्व से लेस थे।

3. मीर समन

मीर समन वह मंत्री होता था, जो शाही भवनों, सड़कों, पार्कों, कारखानों आदि के रख रखाव के काम को देखता था। सैन्य और घरेलू आपूर्ति के लिए भंडार के प्रावधान का उत्तरदायित्व भी इसी का होता था। राज्य की ओर से सभी सामान की खरीद और व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए भी वह उत्तरदाई था। निर्यात की उत्तरदायित्व भी उसी पर थी। अभियानों के दौरान वह सम्राट के साथ जाया करता था और उनके ठहरने की व्यवस्था करता था।

मीर समन को एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी, जो दीवान-ए-ब्यूलत के नाम से जाना जाता था । ये वित्तीय पहलुओं को देखता था और वित्त विभाग के साथ इसका सीधा संपर्क हुआ करता था।

4. सदर

सदर मुख्य न्यायाधीश थे और धर्म सम्बन्धित मामलों के प्रभारी थे। सदर दो विभागों को देखता था, एक न्याय और दूसरा धर्म। काजी[4] के रूप में यह न्यायिक कार्यों को देखता था। हम पाते हैं कि काजी मुस्लिम कानून के अनुसार न्यायिक मामलों को निपटाया करता था, इस कारण उसके पद को अत्यधिक गरिमा प्राप्त होती थी। उसे राजा की ओर से न्याय की शक्ति प्रयोग करने का हक था। वह निचली न्यायालयों के फैसलों के खिलाफ अपील भी सुनता था।

यह ध्यान देने वाली बात है कि मुगल काल के दौरान न्याय विभाग काफी भ्रष्ट था, जैसा कि प्रो0 जे.एन. सरकार ने उल्लेख किया हैः ''कुछ अपवादों के साथ, मुगल काल के सभी काजी रिष्वत लेने के लिए कुख्यात थे।''

5. मुहतासिब

मुहतासिब का पद दो तरह के कर्त्तव्यों निभता था, जो एक ओर धर्मनिरपेक्ष था और दूसरी ओर धार्मिक था। अपने धार्मिक कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में वह सुनिश्चित करता था कि इस्लाम के सिद्धान्त सुरक्षित हैं और धर्म के सिद्धान्त को निष्ठापूर्वक निभाया जा रहा है। नैतिक सिद्धान्तों को भी जनता के बीच लाया गया। प्रो. ए.एल. श्रीवास्तव ने कहा कि मुहतासिब शराब और अन्य नशीले पदार्थों के विरूद्ध थे। इसके अतिरिक्त, जुआ भी निशिद्ध था। धार्मिक कानून के अनुसार, प्रत्येक मुसलमान को दिन में पाँच बार नमाज पढ़ना आवश्यक था और जो लोग ऐसा नहीं करते थे उन्हें दण्डित किया जाता था।

इसके अतिरिक्त, बाजारों के उचित नियमन का उत्तरदायित्व भी मुहतासिब में अंतर्निहित था, इस भूमिका को निभाने के लिए वह उपयोग किए गए वजन और माप का निरिक्षण करता था और यह भी सुनिश्चित करता था कि चीजें उचित कीमतों पर उपलब्ध हो। वह शहर में स्वच्छता के रखरखाव के लिए भी उत्तरदाई था।

उपरोक्त अधिकारियों के अतिरिक्त, खबर लिखने वाला एक दरोगा-ए-डाक-चौकी होता था। खबर लिखने वाले को राजा मीर बख्शी की सलाह पर नियुक्त करता था। वह आमतौर पर पाँच साल की अवधि के लिए नियुक्त किया जाता था। संवाददाता को राज्य में होने वाली विभिन्न घटनाओं के बारे में राजा को सूचित करना होता था। उनसे ये आशा की जाती थी

[4] काजी, न्यायपालिका में, सुल्तान के बाद दूसरी इकाई/एजेंसी थी। प्रांतों में यह एक बड़ी भूमिका निभाता था। वह कोर्ट/न्यायालय में न्याय देता था।

कि उनके द्वारा दी गयी सूचना प्रमाणिकता पर सही उतरेगी और साथ-साथ विश्वसनीय भी होगी। इसके लिए उन्हें पुरस्कृत भी किया जाता था (अन्यथा, अविश्वसनीय समाचार के लिए दंडित किया जाता था)। आमतौर पर, संवाददाता से यह आशा की जाती थी कि वे साप्ताहिक आधार पर रिपोर्ट राजा को प्रस्तुत करेगा।

डाक विभाग एक दरोगा-ए-चौकी की अधीन था। वह सुनिश्चित करता था कि राज्य के विभिन्न भागों से समाचार बिना किसी भी देरी के राजा तक पहुँचाए जाए। इस उद्देश्य से घोड़ों को तैयार रखा जाता था। दरोगा-ए-चौकी की सहायता के लिए एक अधिनस्थ दरोगा हुआ करता था।

अब हम प्रांतीय प्रशासन की चर्चा करेंगे।

2.4.2 प्रांतीय प्रशासन

पूरे राज्य को कई प्रांतों में विभाजित किया गया था। हालाँकि, प्रांतों की संख्या विभिन्न मुगल शासकों के काल में अलग–अलग हुआ करती थी। उदाहरण के लिए अकबर के अधीन 15 प्रांत थे, जबकि, जहाँगीर और औरंगजेब के अधीन प्रांतों की संख्या बढ़कर क्रमशः 17 और 21 हो गई थी।

साथ ही, कुछ ऐसे अधिकारी थे, जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रभारी थे, जिनकी चर्चा अब हम करेंगे।

1. सूबेदार

प्रत्येक प्रांत एक सूबेदार के अधीन था, जिसे राज्यपाल के रूप में भी जाना जाता था। अकबर के समय में सूबेदार को सिपहसलार के नाम से भी जाना जाता था। सूबेदार का अस्तित्व उसके प्रांत में राजा के ही समान था, और कानून और व्यवस्था के रखरखाव, स्थानीय सेना पर नियंत्रण, राज्य को देय की वसूली, तथा न्याय के प्रावधान का उत्तरदायित्व इसी के हाथों में ही था। प्रायः शाही परिवार के सदस्यों या विश्वासपात्र कुलीन को ही राजा द्वारा इस पद पर नियुक्त किया जाता था। हालाँकि, इस पद पर नियुक्ति में राजा द्वारा प्रतिभा और कौषल के नियम का भी पालन किया जाता था। सुबेदार केवल अपनी योग्यता[5] के आधार पर आसीन हुआ करता था और उसके सभी अधिकार राजा से प्राप्त होते थे और वे राजा के इच्छानुरूप अपने पद पर बने रहता था।

2. दीवान

दीवान को सुल्तान द्वारा नियुक्त किया जाता था और वह प्रांतों के प्रशासन को चलाने में सूबेदार की सहायता करता था। प्रारम्भिक मुगल शासन के समय, दीवान को सूबेदार के समानांतर ही माना जाता था। हालांकि, दीवान को अपने समकक्षों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। दीवान प्रांतीय प्रशासन के आय-व्यय तथा राजस्व संग्रह को देखा करता था।

3. सदर

सदर को राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था और सदर के काम में दीवान या सूबेदार किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। वह प्रायः एक विद्वान तथा धार्मिक व्यक्ति होता था। वह भूमि और दान वितरित करता था। काजी और मीर आदिल इसके अधीन काम किया करता था।

[5] जैसे, अजीज कोका और अब्दुल रहीम सूबेदार बनाये गये थे, जबकि वे उम्र में बहुत छोटे थे।

4. आमिल

आमिल एक राजस्व संग्रहण अधिकारी था, हालांकि यह कुछ अन्य कर्त्तव्यों का पालन भी किया करता था। यह कृषि भूमि की देखभाल करता था और किसानों की बंजर भूमि को खेती योग्य भूमि में बदलने में सहायता करता था। यह प्रांत के भीतर शांति व्यवस्था रखने में भी सहायता करता था। आमिल राजस्व संग्रहकों के काम की निगरानी के अतिरिक्त करकुन तथा मुकदम जैसे अधिकारियों के कार्यों का भी पर्यवेक्षण करता था।

5. बख्शी

बख्शी का पद आमिल के समान ही था। वह कानूनगो[6] के काम की निगरानी करता था और राजतंत्र द्वारा दर्ज किए गए विभिन्न अनुबंधों का रिकार्ड भी रखता था। वह खेती योग्य और बंजर भूमि और इन भूमि से होने वाले आय-व्यय का पूरा लेखा-जोखा रखता था। उसका कार्य राजा को वार्षिक आय और व्यय का विवरण भेजना था।

6. पोटदार

पोटदार का मुख्य कार्य किसानों से राजस्व संग्रहण करके, इसे राजकोष में जमा कराना होता था। वह जमा किए गए राजस्व की आवश्यक रसीद जारी करता था और उसका पूरा लेखा-जोखा रखने के लिए अधिकृत था। हालांकि, दीवान की सहमति के बिना, पोटदार कोई खर्चा नहीं कर सकता था। दीवान की स्वीकृति से ही उसके द्वारा सारा पैसा जारी किया जा सकता था।

7. फौजदार

फौजदार प्रांतीय सेना का प्रभारी होता था। वह सूबेदार को प्रांतों के प्रशासन में सहायता प्रदान किया करता था। वह प्रांत के भीतर कानून और व्यवस्था के रखरखाव के लिए जिम्मेदार था और संभावित विद्रोह को दबाने के लिए आवश्यक कदम भी उठाया करता था। कभी-कभी यह सेना के प्रदर्शन की व्यवस्था भी करता था। उसे डकैतों की गिरफ्तारी की जिम्मेदारी भी दी गयी थी।

8. कोतवाल

कोतवाल मुख्य रूप से एक पुलिस अधिकारी था, हालाँकि, वह कुछ न्यायिक कार्य भी करता था। इसका उत्तरदायित्व प्रांत में कानून और व्यवस्था को बनाए रखना था।

9. वक-ए-नवीस

वक-ए-नवीस का कार्य राजा को प्रांतों से संबंधित सूचनाओं से अवगत कराना था। वास्तव में, राजा प्रांतीय प्रशासन पर केवल वक-ए-नवीस द्वारा प्रदान की गई जानकारी के आधार पर नियंत्रण करता था।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मुगलों के अधीन प्रांतीय प्रशासन कुशल था। सम्राट प्रांतों पर पर्याप्त नियंत्रण रखने में सक्षम था। वह वहां होने वाली घटनाओं के बारे में भी जानता था। हालांकि, काम और समय के कारण, राजा आवश्यकतानुसार प्रांतीय प्रशासन के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पा पाता था, इसके कारण प्रांतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार फैल गया।

---

[6] सुबा प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक जिले को परगणा में विभाजित किया गया था, जो वित्तीय व पुलिस यूनिट के रूप में कार्यरत थे। प्रत्येक परगणा में पाँच प्रमुख अधिकारी हुआ करते थे, जिनमें एक कानूनगो होता था, जो राजस्व प्रशासन को देखता था।

2.4.3 जिला और स्थानीय प्रशासन

प्रांतों को जिलों में विभाजित किया गया था, जिसे 'सरकार' के रूप में भी जाना जाता था। निम्नलिखित में कर्मचारी जिला स्तर पर विभिन्न कार्यों की देखरेख करते थे।

जिला प्रशासन

1. फौजदार

जिले का प्रशासनिक प्रमुख फौजदार होता था। फौजदार जिला स्तर पर वही काम करता था, जो काम प्रांतीय स्तर पर सूबेदार करता था। निस्संदेह वह सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था, हालाँकि, उसे सूबेदार के नियंत्रण में ही कार्य करना होता था। उसका मुख्य कार्य कानून व्यवस्था को बनाये रखना तथा स्थानीय जमींदारों के विद्रोह को नियंत्रित करना था।

उसे जिला स्तर पर राजस्व संग्रहण अधिकारी आमिल के कर्त्तव्यों का भी पालन करना होता था। इसलिए, उसे दीवान की निगरानी में काम करना होता था। वह जिले के राजस्व विभाग का प्रभारी भी होता था। वह किसानों के साथ सीधे संपर्क बनाए रखता था और उत्पादन बढ़ाने के लिए हर सम्भव उनकी सहायता करता था। वह किसानों को बैल, कीटनाशक, बीज, उर्वरक, और ऐसी अन्य संबंधित चीजों की खरीद के लिए ऋण भी प्रदान किया करता था। वह दिए गए ऋण को आसान किस्तों में वसूल भी करता था। वह अपने नियंत्रण में आने वाली भूमि के बारे में दीवान को रिपोर्ट करता था, वह राजा को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करता था जिसमें प्रजा की आर्थिक स्थिति, खाद्यान्न की उपलब्धता, और कीमतों के साथ-साथ जमींदारों की गतिविधियों के बारे में जानकारी होती थी।

2. कोतवाल

जिला स्तर पर एक और अधिकारी होता था, जिसे 'कोतवाल' के नाम से जाना जाता था। उसका उत्तरदायित्व न्यायिक प्रमुख होने के साथ–साथ कानून और व्यवस्था को बनाये रखना भी था। वह आपराधिक मामलों की सुनवाई करता था, और उन लोगों के विरूद्ध कार्रवाई करता था, जो खाद्यान्न की जमाखोरी, दोषपूर्ण वजन का उपयोग और ऐसे ही अन्य सम्बन्धित मामलों में सम्मिलित होते थे। वह उन सभी लोगों पर निगाह रखता था, जो राजा से मिलने जाते थे। वह यह भी सुनिश्चित करता था कि मुसलमानों द्वारा प्रत्येक शुक्रवार को नमाज़[7] अदा की जा रही है। वह विवाहों का प्रमाण-पत्र प्रदान करता था। मुगल सम्राट औरंगजेब, गैर-मुसलमानों से 'जज़िया[8]' और 'जकात[9]' कर एकत्र किया करता था।

2.4.3 जिला और स्थानीय प्रशासन

जिलों को परगना और गाँवों में विभाजित किया गया था। निम्नलिखित कर्मचारीगण परगना स्तर और ग्राम स्तर पर विभिन्न कार्यों की देखरेख करते थे।

1. मुक्कदम

स्थानीय प्रशासन स्तर पर, जिलों को 'परगना' में विभाजित किया गया था। ये राजस्व संग्रहण की इकाईयाँ थी और हर एक इकाई मुक्कदम के नियंत्रण में आती थी। मुक्कदम

[7] नमाज, इस्लाम धर्म के पाँच स्तम्भों में से दूसरा स्तम्भ है– प्रतिदिन अनिवार्य मानकीकृत प्रार्थना।

[8] जजिया उन लोगों पर लगाया जाता था, जो मुस्लिम नहीं होते थे। इसे राज्य व्यय के लिए उपयोग में लाया जाता था। यह प्रतिव्यक्ति वार्षिक कर होता था।

[9] जकात, यह एक इस्लाम में माने जाने वाला शब्द है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वयं के धन से कुछ भाग आवश्यक रूप से परोपकारी कार्यों को देना होता था।

राजस्व एकत्र किया करता था और उसे राजकोष में जमा करता था। किसानों को यह अनुमति थी कि वे सीधे राजकोष में राजस्व जमा कर सकते थे। परगना स्तर पर अन्य राजस्व अधिकारी आमिल और कानूनगो थे, जो भू-राजस्व एकत्र करते थे। काजी भी हुआ करते थे, जो स्थानीय विवादों को सुलझाया करते थे।

2. सरपंच

प्रशासन की सबसे निचली इकाई गाँव थी। सरकारी हस्तक्षेप के बिना प्रजा के शासन के कारण इन्हें स्वायत्ता का अधिकार मिला हुआ था। प्रत्येक गाँव में एक पंचायत होती थी। पंचायत का नेतृत्व एक सरपंच करता था, जो लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना जाता था। सरपंच गाँव और जिला प्रशासन के बीच एक कड़ी का काम करता था। वह किसानों से राजस्व एकत्र करता था और उसे राजकोष में जमा कराता था। राजस्व जमा करने में किसी भी देरी के मामले में, ये जिला प्रशासन के प्रति उत्तरदायी होता था।

सरपंच को उसकी आय के रूप में राजस्व की कुल वसूली का ढाई प्रतिशत मिलता था। उसे एक पटवारी और ग्राम लेखाकार द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। पटवारी खेतों से राजस्व एकत्र किया करता था और लेखाकार उस राजस्व का हिसाब रखता था।

पंचायत सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, और विकास कार्यक्रमों के लिए आवश्यक व्यवस्था करने के लिए भी उत्तरदाई थी। धार्मिक कर्त्तव्य उसकी देखरेख में सम्पन्न होते थे और गाँव के लोगों के नैतिक उत्थान के लिए भी वह उत्तरदाई था। विभिन्न त्यौहारों के उत्सव के लिए आवश्यक व्यवस्था करने और कानून व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी पंचायत का था। पंचायत कुछ न्यायिक शक्तियों का भी निर्वहन करती थी और मामूली विवादों का फैसला भी करती थी।

2.5 राजस्व प्रशासन

जब हम राजस्व प्रशासन के बारे में बात करते हैं, तब यह बताना उचित होगा कि भू–राजस्व मुगल राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होता था। राजा के भू–भाग को बारहवें/आठवें/एक-चौथाई के रूप में परिभाषित किया गया था। ये आमतौर पर सम्राट पर निर्भर करता था।

उस समय में तीन प्रकार की भूमि अधिकार प्रणाली थी। बंगाल में पहली जमींदारी प्रणाली प्रचलित हुई और इसे अंग्रेजों द्वारा मद्रास के कुछ भागों तक विस्तृत किया गया। इस प्रणाली के अंतर्गत जमींदारों ने भू–राजस्व को निश्चित करने के लिए साम्राज्य और किसानों के बीच मध्यस्थ का काम किया। दूसरी प्रणाली महलवारी प्रणाली थी, जिसका विस्तार उत्तर पश्चिम प्रांत में देखा गया था, जिसमें भू–राजस्व का निपटान जमींदारों और किसानों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता था, क्योंकि उन दोनों के पास भूमि का संयुक्त स्वामित्व था। तीसरी प्रणाली रैयतवारी[10] प्रणाली, जो उत्तर भारत और दक्कन में प्रचलित थी, ने राज्य और रैयतों या किसानों के बीच सभी प्रकार के बिचौलियों को समाप्त कर दिया। हालांकि, किसान खेत के राजस्व के वार्षिक भुगतान के लिए उत्तरदायी थे, लेकिन उनके पास कोई स्वामित्व का अधिकार नहीं होता था। ये राजा में निहित थे।

[10] रैयतवारी प्रणाली भू–राजस्व प्रणाली थी।

2.6 न्यायिक प्रशासन

अब हम दीवानी (सिविल) न्यायिक प्रशासन एवं फौजदारी (क्रीमिनल) न्यायिक प्रशासन पर चर्चा करेंगे।

2.6.1 दीवानी (सिविल) न्याय प्रशासन

मुगल राज्य, जो एक पूर्णतया मुस्लिम राज्य था, जिस कारण दीवानी न्याय प्रशासन पूर्ण रूप से कुरान के नियमों पर आधारित था। काजी (न्यायाधीश) न्याय देने में कुरान के आदेशों का पालन करते थे। इस सम्बन्ध में काजी पहले से किए गए निर्णयों के साथ-साथ सम्राटों द्वारा जारी किए गए अध्यादेशों से भी निर्देशित होते थे। काजी को प्रथागत कानून पर कायम रहना पड़ता था तथा समानता के नियमों का पालन करना आवश्यक था। निस्संदेह, सम्राट मूल और अपीलीय दोनों ही न्यायक्षेत्र के संदर्भ में अंतिम अधिकारी था, परन्तु, इस संबंध में भी वह कुरान के पवित्र कानूनों को कभी अस्वीकार नहीं कर सकता था।

2.6.2 फौजदारी (क्रिमिनल) न्याय प्रशासन

दीवानी न्याय की तरह ही फौजदारी न्याय प्रशासन भी कुरान की उपदेशों पर ही आधारित था। आपराधिक मामलों को तीन मुख्य भागों में वगीकृत किया गया था अर्थात् ईष्वर के विरूद्ध किया गया अपराध, राजा के विरूद्ध किया गया अपराध, तथा प्रजा के विरूद्ध किया गया अपराध। अपराधियों को 'हुदा' या प्रतिरोध और ताजिर (न्यायाधीशों द्वारा दी गई सजा)[11] जैसी सजा दी जाती थी।

सजा बहुत कठोर हुआ करती थी। मुगल राज्य के खिलाफ राजद्रोह और शडयंत्र के लिए लोगों को जिन्दा जलाना या कोड़े से मारके हत्या करना आम बात थी। औरंगजेब के शासनकाल में, किसी गैर-मुस्लिम की गवाही पर किसी मुस्लिम को दंडित नहीं किया जा सकता था, लेकिन इसके विपरीत स्थिति होने पर ऐसा कुछ नहीं होता था।

औरंगजेब के बाद, कोई ऐसा सम्राट नहीं हुआ, जो मुगल साम्राज्य के वर्चस्व को संभाल सकता था। प्रशासन, न्याय, व्यापार और वाणिज्य, राजस्व आदि षिथिल पड़ गए, जिस कारण मुगल साम्राज्य लुप्त होने पर आ गया था। 1600 ई0 तक ईस्ट इण्डिया कंपनी ने अपना अतिक्रमण बढ़ा लिया था जिससे मुगल साम्राज्य पूरी तरह से लुप्त हो गया।

2.7 सेना और पुलिस

2.7.1 सेना

मनसबदारी प्रणाली के अंतर्गत हम सैन्य व्यवस्था को समझ सकते हैं। प्रत्येक मनसब एक मुगल अधिकारी के अधीन था। और उनसे ये अपेक्षा की जाती थी कि वे सैन्य सेवा के लिए राज्य को एक निश्चित संख्या में सैनिकों की आपूर्ति करेंगे। मनसबदारों को 33 श्रेणियों में वगीकृत किया गया था। प्रत्येक श्रेणी के लिए एक निश्चित वेतन था। अधिकारियों को वेतन नकद या जागीर के रूप में दिया जाता था। यदि मनसबदारों को जागीर से राशि प्राप्त होती थी, तो यह राशि आवंटित किए गए वेतन राशि के समतुल्य होनी होती थी। जागीर

[11] इसके अन्तर्गत तिरस्कार, जनसमुदाय के सामने बेइज्जती, कोड़े मारना, और देश निकाला आदि आते थे।

प्रणाली के अंतर्गत जागीरदारों को अत्यन्त रूप से सत्ता व स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी, जिस कारण जन समुदाय के शोषण में बढ़ोतरी हो गयी थी।

इसके अतिरिक्त संपूरक सैनिक और विशेष श्रेणी वाले 'सज्जन सैनिक[12]' (gentlemen troopers) भी थे। सेना के पास घुड़सवार सेना, पैदल सेना, और तोपें व बन्दुकें थीं। मुगल राज्य में नौसेना भी थी।

जैसे-जैसे मुगल सेना की संख्या बढ़ती गई, यह अत्यन्त रूप से बोझिल हो गई थी। कूच करती हुई सेना एक चलते-फिरते विशाल शहर के जैसे लगती थी, जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, बाजार आदि होते थे। इसको बनाये रखने में लागत असहनीय हो गई थी, जो कि जहाँगीर के समय आते–आते स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। मुकाबला करने में मुगल असमर्थ हो गए थे, जिस कारण षिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने युद्ध में मुगलों को हरा दिया।

2.7.2 पुलिस

ग्रामीण क्षेत्रों में, ग्राम प्रधान और उनके अधीनस्थ चौकीदारों द्वारा पुलिस सम्बन्धित कार्य किए जाते थे। शहरों में कोतवाल होते थे, जिनका मुख्य कार्य शहरी क्षेत्रों में शान्ति और नागरिक सुरक्षा को बनाए रखना था। इनका कार्य चोरों को गिरफ्तार करना, कानून व्यवस्था बनाए रखना, कीमतों को नियंत्रित करना, और नाप-तोल सम्बन्धित दोशों की जाँच करना था। उन्हें गुप्तचरों को नियुक्त करने के साथ-साथ कार्यों का निरीक्षण भी करना होता था। उन्हें मृतकों और लापता व्यक्तियों की संपत्ति की एक सूची बनानी होती थी। जिलों में कानून और व्यवस्था बनाये रखने का काम फौजदारों को सौंपा गया था।

गतिविधि

राजा मुगल प्रशासन के शीर्ष पर होता था। कुछ राजा अन्य की तुलना में अधिक सद्भावपूर्ण होते थे। विभिन्न मुगल शासकों के अंतर्गत, मुगल प्रशासन किस प्रकार का था– बताएं।

2.8 सारांश

मध्यकालीन भारत प्राचीन और आधुनिक भारत के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की एक लंबी अवधि को संदर्भित करता है। मुगल प्रशासन ने मौर्य शासकों के राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणालियों में प्रचलित बहुत सी परम्पराओं को आगे बढ़ाया। मुगलों ने विशाल शासन व्यवस्था का निर्माण किया। सभी मुगल सम्राट शक्तिशाली थे और उनका प्रशासन केंद्रीकृत था। राजा राज्य का प्रतीक था और सभी शक्ति और अधिकार का स्त्रोत और केन्द्र था। प्रांतीय सरकारें प्रशासनिक एजेंसियों की प्रकृति की थीं।

मुगलों की एक कुशल लोक सेवा थी। उन्होंने योग्यता को मान्यता दी और उच्च लोक सेवा में हिन्दु बुद्धिजीवियों को स्थान दिया। लोक सेवा एक उच्च नगरीकृत संस्थान थी तथा इसका मुख्य कार्य राजस्व से संबंधित था।

2.9 संदर्भ लेख

1) Majumdar, R. (et.al), 1967, An Advanced History of India, Macmillan, New York

[12] ये प्रायः घुड़सवार होते थे।

2) Misra, B.B., 1959, The Central Administration of the East India Company 1773-1834, Manchester University Press, Manchester

3) Puri, B.N., 1975, History of Indian Administration, Volume II, Medieval Period, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay

4) Indian Administration, BPAE-102, 2005, School of Social Sciences, IGNOU, New Delhi

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 अंग्रेज प्रशासन प्रणाली

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी–एक अवलोकन

3.3 अंग्रेज प्रशासन

- 3.3.1 मार्ले–मिंटों सुधार, 1909
- 3.3.2 माटेग्यू–चेल्म्सफोर्ड सुधार, 1919
- 3.3.3 प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली
- 3.3.4 भारत सरकार अधिनियम 1935
  - 3.3.4.1 अखिल भारतीय महासंघ
  - 3.3.4.2 प्रांतीय स्वायत्तता

3.4 अंग्रेज प्रशासन की विशेषताएं–भारतीय प्रशासन पर प्रभाव

- 3.4.1 केन्द्रीकृत प्रशासन
- 3.4.2 प्रांतीय सरकार
- 3.4.3 स्थानीय सरकार की संरचना का विस्तार
- 3.4.4 कानून का नियम
- 3.4.5 सिविल सेवाएं

3.5 सारांश

3.6 संदर्भ लेख

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप सक्षम होंगेः

- ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन करने में;
- 1858 से 1935 के दौरान, अंग्रेज प्रशासन द्वारा किये गये सुधारों के बारे में वर्णन करने में;
- अंग्रेज प्रशासन की मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट करने में।

3.1 प्रस्तावना

सर्वप्रथम, अंग्रेज भारत में व्यापारियों के रूप में आये। 1600 ई0 में ब्रिटिश क्राउन ने व्यापारियों के एक समूह को पूर्वी समुद्र में व्यापार करने का एकाधिकार दे दिया, जिसके कारण अंततः कम्पनी की स्थापना हुई। कंपनी भारत में एक व्यापारिक निगम के रूप में आयी और 1765 तक इसी रूप में काम करती रही।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद, कंपनी ने भारत पर शासन करने के लिए क्षेत्रीय आधार (territorial grounds) और शक्तियाँ प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारण, कंपनी ने अपना नाम बदल कर ईस्ट इंडिया कंपनी कर लिया।

इस इकाई में, हम ब्रिटिश प्रशासन के दोनों अर्थात् संवैधानिक और प्रशासनिक पहलूओं को समझेंगे।

3.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी–एक अवलोकन

ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापारिक उद्देश्यों के साथ भारत में आई और पूर्ण रूप से व्यापारिक थी। इसमें एक समिति थी, जिसकी अध्यक्षता गवर्नर द्वारा की जाती थी। अध्यक्ष के पास विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ होती थीं। समिति ने व्यापार बोर्ड, सैन्य बोर्ड, राजस्व बोर्ड, और रेलवे बोर्ड आदि का गठन किया। इन बोर्डों के कारण विधायी और कार्यकारी मामलों में चर्चा और विचार–विमर्श प्रारम्भ हुआ। रिकॉर्ड का रखरखाव एक मुख्य कार्य था, जिसने निरपेक्षता और अनियंत्रित शक्ति को नियंत्रण करने में सहायता की।

अगस्त 1765 में, जब से तत्कालीन मुगल सम्राट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बिहार, बंगाल, और उड़ीसा के प्रांतों में 'दीवानी' (भू–राजस्व) एकत्र करने की शक्तियाँ प्रदान कीं, तब पहली बार ईस्ट इंडिया कंपनी को शक्ति और अधिकार का आभास हुआ। राजस्व संग्रहण से प्रारम्भ होकर कंपनी ने धीरे–धीरे नागरिक, न्यायिक और सैन्य मामलों से संबंधित शक्तियों पर पूर्ण अधिकार कर लिया। कंपनी के अब दो प्रमुख लक्ष्य थे–विजय और एकीकरण।

सहायक संधि का सिद्धांत एक आक्रामक नीति थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि अब कंपनी के अधिकारी देशी रियासतों द्वारा शासित स्थानीय राज्यों के राजनीतिक और प्रशासनिक मामलों में बढ़–चढ़ कर रुचि लेने लगे। 18वीं शताब्दी का प्रारम्भ एक ऐसे युग के रूप में देखा जा सकता था, जब कंपनी के अधिकारियों ने स्थानीय राज्यों के राजनीतिक, वाणिज्यिक, और सैन्य गतिविधियों में हस्तक्षेप का अधिकार अपने लाभ के लिए प्राप्त किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक विशाल प्रशासनिक तंत्र और सुव्यवस्थित कार्मिक प्रणाली की स्थापना की, जिसके माध्यम से वे भारत के क्षेत्रीय प्रांतों पर नियंत्रण व उनका एकीकरण कर सकते थे। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सिविल सेवा कोड विकसित किया। उन्होंने जिला कलेक्टर के कार्यालय को नियमित और निर्दिष्ट किया और जिला न्यायाधीश के कार्यालय की स्थापना की। लॉर्ड वेलेस्ले के शासनकाल में मुख्य सचिव का कार्यालय स्थापित किया गया था। लॉर्ड बेंटिक के शासनकाल में आयुक्त का कार्यालय और सचिवालय में अनुभागीय व्यवस्था की गई थी। चार्टर अधिनियम 1833 के अंतर्गत, बंगाल के गवर्नर जनरल का भारत के गवर्नर जनरल के रूप में नियुक्ति की गई, जो अब भारत में ब्रिटिश प्रशासन के प्रमुख था। लॉर्ड डलहाउसी के 'समाप्ती के सिद्धांत' ने कंपनी को भारतीय राज्यों के नीतिगत मामलों पर पूर्ण शक्ति और नियंत्रण करने का अधिकार दिया। इससे, ब्रिटिश शासन को राजस्व के अधिकारों के साथ–साथ भारत के दूरस्थ कोने तक एक सुदृढ़ आधार स्थापित करने में सहायता मिली।

हालांकि, समय बीतने के साथ, कंपनी में भ्रष्टाचार फैल गया। कंपनी के प्रबंधन को नियमित करने के लिए, ब्रिटिश संसद ने दो प्रमुख अधिनियमों, रेगुलेटिंग एक्ट 1773 और पिट्स इंडिया एक्ट 1784 को पारित किया। इसके बाद 1793, 1813, 1833, और 1853 अधि ानियमों ने अधिकार, शक्ति, और विशेषाधिकारों से कंपनी को लगातार वंचित रखा।

रेग्यूलेटिंग एक्ट 1773 और पिट्स इंडिया एक्ट 1784 ने कंपनी की स्थिति नियंत्रित किया। रेगुलेटिंग एक्ट 1773 ने कंपनी को रि–मॉडल किया और इसे ब्रिटिश सरकार की निगरानी

में रखा। भारत के मामलों को देखने के लिए पिट्स इंडिया एक्ट 1784 के अंतर्गत इंग्लैंड में एक नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की, जिसमें सरकारी खजाने के प्रमुख, राज्य सचिव, और चार सर्वोच्च पार्षद सम्मिलित थे। तब पहली बार, सरकार को भारत सरकार के रूप में जाना गया। देश का प्रशासनिक व्यवस्था को संभालने के लिए गवर्नर जनरल नियुक्त की गई। वारेन हेस्टिंग्स प्रथम गवर्नर जनरल थे। गवर्नर जनरल समिति में कंपनी के तीन वचनबद्ध सदस्य थे। गवर्नर जनरल के पास समिति द्वारा लिए गये निर्णयों को रद्द करने का अधिकार था। कंपनी के अधीन जिलों की प्रशासनिक व्यवस्था यूरोपीय जिला कलेक्टरों के हाथों में थी, जिन्हें संबंधित जिलों में कंपनी के नागरिक और आपराधिक न्यायालयों का अध्यक्ष भी बनाया गया था। जिला कलेक्टरों की निगरानी के लिए कलकत्ता में राजस्व बोर्ड का गठन किया गया था।

1857 के संग्राम, जिसे पहला भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में जाना जाता है, ने भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत किया। ब्रिटिश संसद में भारत सरकार अधिनियम 1858 पारित किया गया, जिसके अनुसार कंपनी का शासन समाप्त हो गया। सभी शक्तियां ब्रिटिश क्राउन को हस्तांतरित कर दी गईं, जिसने भारत में एक कार्यालय बनाया, जिसमें राज्य सचिव थे, जो प्रशासन से संबंधित मामलों को देखते थे। गवर्नर जनरल के पद को अब वायसराय (भारत में ब्रिटिश क्राउन का मुख्य प्रशासक) के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था। यह भारत में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित आदेशों के कार्यान्वयन को देखता था। सेना को पुनर्गठित किया गया और अधिकांश उच्च पद यूरोपीयों को, और कुछ, भारत के उच्च जाति वाले अधिकारियों को दिये गये। एक विशेष उद्देश्य के लिए जातिगत भेदभाव किया गया, जिससे भविष्य में अन्य सैन्य विद्रोह को रोका जा सके।

इस प्रकार ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, भारत में ब्रिटिश क्राउन के शासन की अग्रगामी थी। 1857 के विद्रोह के बाद, भारत का शासन सीधे ब्रिटिश क्राउन के अधीन आ गया।

3.3 अंग्रेज प्रशासन

1857 के सैन्य विद्रोह का विप्लव, स्वतंत्रता के पहले संग्राम के रूप में ब्रिटिश सरकार के लिए एक झटका था। आर्थिक शोषण, सामाजिक अभाव, और राजनीतिक अषांति ने 1857 के विद्रोह को अपरिहार्य बना दिया। ब्रिटिश शासकों को विजय और उत्थान की अपनी नीति को बदलकर, संगठन और सहयोग की एक सतर्क और उपयुक्त नीति अपनानी पड़ी। 1858 के अधिनियम ने विभिन्न बदलाव किए, जिसके अन्तर्गत देशी रियासतों के अधिकार और सम्मान को सुनिश्चित किया गया।

1857 का संग्राम ब्रिटिश शासकों के लिए एक झकझोरने वाली घटना थी। भारतीय परिषद अधिनियम 1861 के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद में बड़ी संख्या में गैर–अधिकारी सदस्यों को सम्मिलित किया। गवर्नर जनरल की विधायी शक्तियाँ बढ़ गई। अब सार्वजनिक वित्त, धर्म, अनुशासन, सेना के रखरखाव, और विदेशी राज्यों के साथ संबंधों को प्रभावित करने वाले कार्यों में गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी। विधायिका द्वारा किसी भी अधिनियम को पारित करने के लिए, गवर्नर जनरल की सहमति आवश्यक थी। उसके द्वारा जारी किए गए अध्यादेश को अधिनियम की वैधता थी।

हालाँकि, 1861 का अधिनियम प्रचलित जनमत को संतुष्ट नहीं कर सका। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने पहले सत्र में एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके अन्तर्गत इन परिषदों को व्यापक और चयनित किया जाये, और साथ ही इनको बजटीय और कार्यकारी शक्तियॉ प्रदान की जाये।

यद्यपि अंग्रेजों ने देश में 1857 से 1947 तक सरकार की एक नियमित प्रणाली स्थापित की, परन्तु उनकी दिखावे की सहचर्य नीति दमन के साथ–साथ चलती थी। संवैधानिक प्रावधान को प्रायः दमनकारी शर्तों से प्रतिबन्धित किया गया था, जिससे अधिकारी कार्यकारी भारतीय नागरिकों के लिए अछूत रहे। ऐसे विरोधाभास साम्राज्यवाद के साथ परिहार्य होते हैं और ये लोकतांत्रिक सिद्धांत और प्रथाओं के अनुरूप नहीं होते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) के अधीन संगठित किया, जिसे 1885 में स्थापित किया गया। प्रारम्भ में, कांग्रेस पश्चिमी शिक्षित उच्च मध्यम वर्ग से प्रभावित हुआ, जिसका उद्देश्य शांतिपूर्ण और संवैधानिक माध्यम से सुधार लाना था। ब्रिटिश शासकों को भी ऐसा लगा कि इससे सरकार के मन्तव्य/इरादों के बारे में लोगों का भ्रम दूर होगा और ब्रिटिश शासन और अधिक सुदृढ़ बनेगा। नरमपंथियों को अंग्रेजों की न्याय और निश्पक्ष भावना पर विश्वास था और उनको संवैधानिक उपायों के साथ क्रमिक सुधारों की भी आशा थी। लेकिन दूसरी ओर गैर–मध्यस्थ वर्ग भी था, जिनकी विचारधारा उदारवादी नहीं थी, वे 'पूर्ण स्वराज' (पूर्ण स्वतंत्रता और संप्रभुता) से कम में मानने वाले नहीं थे।

कांग्रेस को भारतीय लोगों के हितों की चिंता थी, कांग्रेस के दबाव के कारण ही, ब्रिटिश सरकार ने व्याप्क और प्रतिनिधित्व प्रशासन बनाने के सुधार आरम्भ किये। राजनीतिक क्षेत्र में, कांग्रेस ने कार्यकारी परिषद को भंग करने, विधायी परिषदों में सुधार करने, स्थानीय निकायों को अधिक अधिकार दिये जाने, स्थानीय निकायों के काम में आधिकारिक हस्तक्षेप को कम करने और प्रेस पर प्रतिबंध हटाने की वकालत की। कांग्रेस ऐसा शासन चाहती थी, जिसमें सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो और जो भारतीयों के हित में हो।

3.3.1 मार्ले–मिन्टों सुधार 1909

मॉर्ले मिंटो सुधार 1909 के अंतर्गत विधान परिषद, इंपीरियल परिषद और प्रांतीय परिषद के सदस्यों की संख्यां में वृद्धि हुई। इम्पीरियल परिषद के लिए संख्या 16 सदस्यों से बढ़ाकर 60 सदस्यों तक हो गयी। बड़ी प्रांतीय परिषदों के लिए, संदस्यों की संख्या बढ़कर 50 हो गयी, और छोटे प्रांतों के लिए यह संख्या 30 तय की गयी। इन परिषदों में सदस्यों के निर्वाचित होने के साथ ही, नामांकित होने का भी प्रावधान था। इन सुधारों ने विधान परिषदों के कार्यों का विस्तार किया, जिसमें वार्षिक बजट पर चर्चा, जनहित के किसी भी मुद्दे पर बहस, और निर्वाचित सदस्यों से प्रष्न पूछने की शक्ति सम्मिलित थी। इस अधिनियम ने बॉम्बे, मद्रास, और बंगाल की तीन प्रमुख प्रेसीडेंसीयों में कार्यकारी पार्षदों की संख्या भी बढ़ा दी। अब भारतीयों को भी राज्य परिषदों के सचिव और गवर्नर जनरल की परिषद के सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता था। इन सुधारों ने मुसलमानों के प्रतिनिधित्व की प्रणाली आरम्भ की।

लॉर्ड मार्ले, जो तत्कालीन राज्य सचिव थे, और लार्ड मिन्टों, जो भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल थे, ब्रिटिश प्रशासन के वर्चस्व को एक प्रतिनिधि सभा के पक्ष में बांटना नहीं चाहते थे। ये सुधार एक उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं कर सके, और कांग्रेस के उदारवादी दल भी इन सुधारों से असहमत हुए।

प्रथम विश्व युद्ध में, मित्र राष्ट्रों के साथ भारत सरकार के सहयोग, 1916 में कांग्रेस लीग की लखनऊ संधि[1], कांग्रेस में चरमपंथियों का पुनः सम्मिलित होना, और होम रूल आंदोलन

[1] लखनऊ संधि, 1916 एक समझौता था जो लखनऊ में अक्टूबर 1916 में आयोजित दोनों पक्षों के एक संयुक्त सत्र में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुआ था।

ने और अधिक संवैधानिक सुधारों को आवश्यक बना दिया, जिससे एक बेहतर और उत्तरदायी सरकार की ओर एक पहल हुई। भारत के राज्य सचिव, मांटेग्यू, ने अगस्त 1917 में प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का सहयोग बढ़ाने के लिए एक नीति घोषित की और भविष्य के संवैधानिक विकास के लिए दिशा और उद्देश्य दिया। मांटेग्यू ने लॉर्ड चेल्म्सफोर्ड के साथ भारत का दौरा किया और 1919 में मांटेग्यू–चेल्म्सफोर्ड रिपोर्ट 'उदारवादी दर्षन की अभिव्यक्ति' सुधारों का प्रस्ताव रखा। इन सुधारों को भारत के संवैधानिक विकास में एक मील का पत्थर माना गया है।

3.3.2 मांटेग्यू–चेल्म्सफोर्ड सुधार 1919

मांटेग्यू–चेल्म्सफोर्ड सुधार, 1919 तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर आधारित थे। पहला, स्थानीय सरकार के क्षेत्र में सार्वजनिक नियंत्रण स्थापित किया जाना था। दूसरा, प्रांतीय सरकारों को लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए, और तीसरा, ब्रिटिश संसद और राज्य सचिव द्वारा नियंत्रण के प्रयास को कम किया जाए। सुधारों की प्रस्तावना में घोषणा की गई कि प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का सहयोग बढ़ाया जायेगा, जो धीरे–धीरे स्वशासनिक संस्थाओं के विकास की ओर ले जाएगा। यह ब्रिटिश भारत में एक उत्तररदायी सरकार के प्रगतिशील कार्यान्वयन/बोध की आवश्यकता के लिए किया गया था। प्रस्तावना की आत्मा के संदर्भ में, इन सुधारों द्वारा स्थानीय सरकारों के अंतर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्रों में एक पूर्ण लोकप्रिय नियंत्रण प्रदान किया गया। इससे प्रांतीय सरकारों में प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई और उनको स्वतंत्रता प्राप्त हुई। द्वैध शासन प्रणाली में यह पूर्णरूप से दिखाई देने लगा। भारत सरकार अभी भी ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी। लेकिन भारतीय विधान परिषद का आकार बढ़ाया गया और इसे जनता के प्रतिनिधित्व के अनुसार और अधिक लोकतांत्रिक बनाया गया। इन सुधारों से भारत सरकार पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण कम हो गया और प्रांतीय सरकारों पर केंद्र सरकार का अधिकार भी कम हो गया।

3.3.3 प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली

सरकार के सभी विषयों को केंद्र और प्रांतीय सरकारों के बीच विभाजित किया गया तथा प्रांतीय स्तर पर भी, विषयों को दो भागों– आरक्षित विषय और हस्तांतरित विषय में विभाजित किया गया। यह द्वैध शासन प्रणाली थी, जिसमें सरकारी प्रशासन को, आरक्षित और स्थानांतरित विषयों में विभाजित किया गया था। आरक्षित विषय उन पार्षदों के प्रभार में थे, जिन्हें राज्यपाल द्वारा नामित किया जाता था। हस्तांतरित विषय उन पार्षदों के प्रभार में थे, जिन्हें राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया गया था। आरक्षित विषय मुख्य विभाग हुआ करते थे, जबकि हस्तांतरित विषयों को सुरक्षित माना जाता था, भले ही वे भारतीय के हाथों में हों। आरक्षित विषय के प्रभारी पार्षद विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे, लेकिन राज्यपाल के साथ वे राज्य के सचिव और ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तांतरित विषयों के प्रभारी प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तयरदायी थे। राज्यपाल ने निर्देशों और कार्यकारी व्यावसायिक नियमों के माध्यम से पूरे प्रशासन पर अपनी शक्तियों का प्रयोग किया।

द्वैधशासन का प्रयोग विफल रहा। भारतीय नेशनल कांग्रेस ने 1920 में हुए पहले चुनावों का बहिश्कार किया। हालांकि, स्थानीय सरकार, शिक्षा, और सामाजिक कल्याण से संबंधित कुछ प्रमुख सुधार किए गए। लगभग हर प्रांत में, महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया गया। द्वैधशासन विफल रहा, लेकिन इसने एक संघीय सरकार का रास्ता दिखाया, जिसमें अधिक प्रतिनिधित्व और उत्तरदायित्व था।

3.3.4 भारत सरकार अधिनियम 1935

3.3.4.1 अखिल भारतीय महासंघ

भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत, प्रांतीय स्वायत्तता के साथ–साथ केंद्र में एक अखिल भारतीय महासंघ बनाने के लिए प्रस्ताव दिया। इस अधिनियम द्वारा भारत में प्रांतों और रियासतों के लिए एक महासंघ का प्रस्ताव रखा गया। रियासतों के पास संघ में शामिल होने का विकल्प था और इस सम्बन्ध की प्रकृति, जो अंगीकार पत्र पर आधारित थी, के कारण प्रत्येक राज्य में अलग–अलग थी।

इस अधिनियम द्वारा द्विसदनीय विधायिका के लिए प्रावधान किया गया। निचले सदन को अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाएगा और उच्च सदन में (राज्यों की परिषद) रियासतों और प्रख्यात वर्गों का एक समग्र प्रतिनिधित्व होगा। अधिनियम द्वारा उच्च सदन को अधिक अधिकार दिये गये, जैसे– अनुदानों पर मतदान करने का अधिकार, और सदस्यों को परिषद के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए।

संघीय और प्रांतीय सरकारों को आवंटित विषय तीन सूचियों में बांटे गये। पहली सूची संघीय सूची थी, जिसमें 59 विषय थे, जो सामान्य हित के विषय थे, जिसमें एक–समान व्यवहार की मांग की गयी थी। दूसरी सूची में 54 विषय थे, जो प्रांतीय हितों के विषय थे, जिनमें कोई एक–समान व्यवहार आवश्यकता नहीं थी, उन्हें प्रांतीय सूची में सम्मिलित किया गया। तीसरी सूची में 36 विषय थे, इन विषयों को संघीय और प्रांतीय सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से देखा जाता था। भविष्य में आने वाले अवशिष्ट विषयों को समायोजित की शक्तियां गवर्नर जनरल के हाथों में निहित थीं।

इस अधिनियम ने एक संघीय न्यायालय का प्रावधान किया, जो अंर्तप्रांतीय विवादों के प्रति निर्णय देगा। द्वैषासी प्रशासन का सिद्धांत, अर्थात्, सरकारी प्रशासन को दो विषयों में बांटना केन्द्र पर भी लागू कर दिया गया था। इस अधिनियम ने भारत के लिए संघीय सरकार का प्रस्ताव रखा, और पहली बार भारतीय राज्यों और ब्रिटिश प्रशासन को एक ही संविधान के अंतर्गत लाया गया। इसमें संघ की सभी विशेषताएं थीं, जैसे– लिखित संविधान, संघीय और प्रांतीय सरकारों के बीच विषयों का विभाजन, और संविधान के प्रावधानों की व्याख्या के लिए एक संघीय न्यायालय। इस अधिनियम द्वारा न केवल भारत के लिए संवैधानिक विकास का मार्ग प्रषस्त हुआ बल्कि इसने हमारे संविधान निर्माताओं को भी प्रभावित किया, जिससे वह एक स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बना सके।

जैसा कि अखिल भारतीय महासंघ को प्रस्तावित किया गया था, उसे कार्यान्वित नहीं किया जा सका। पहले की तरह ही ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता बनी रही। राज्य के सचिव और गवर्नर जनरल अंतिम अधिकारी थे और वे अधिनियम से ऊपर थे। इसीलिए कोई भी भारतीय राजनीतिक दल इस अधिनियम से सहमत नहीं हुआ।

3.3.4.2 प्रांतीय स्वायत्तता

1935 के अधिनियम ने द्वैधशासन के स्वरूप को समाप्त कर दिया। स्थाननांतरण और आरक्षित विषयों के अन्तर को दूर कर दिया गया और पूरे प्रशासन का उत्तरदायित्व एक मंत्री को सौंपा गया, जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी था। तीन सूची प्रणाली के अंतर्गत, निर्दिष्ट विषयों के साथ प्रांतों के लिए एक पृथक स्थिति निहित की गयी और केंद्र के साथ उनका एक संघीय संबंध भी स्थापित किया गया।

1935 के अधिनियम को पूर्णरूप से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यह एक अंतरिम संविधान था और बाद में स्वतंत्र भारत के लिए संविधान के मसौदे का आधार सिद्ध हुआ।

3.4 अंग्रेज प्रशासन की विशेषताएं–भारतीय प्रशासन पर

प्रभाव

अब हम अंग्रेज प्रशासन के उन तथ्यों की चर्चा करेंगे, जिनसे भारतीय प्रशासन प्रभावित हुआ।

3.4.1 केन्द्रीकृत प्रशासन

1773 के विनियमन अधिनियम में, पहली बार केंद्रीकृत प्रशासन को देखा गया, जिसने राष्ट्रपति पद की शक्तियों को प्रतिबंधित कर दिया था। प्रेसीडेंसी को गवर्नर जनरल–इन–काउंसिल के प्रशासनिक नियंत्रण में लाया गया था। 1784 के पिट्स इंडिया अधिनियम ने आगे के केंद्रीकरण के लिए मार्ग प्रषस्त किया, जिसमें भारत से संबंधित मामलों को ब्रिटिश सरकार के अधीन नियंत्रण बोर्ड के समक्ष रखा गया था।

हमारे पास केंद्रीय स्तर पर सरकार बनाने के लिए प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के साथ एक केंद्रीय प्रशासन है। राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान (नीति आयोग), संघ लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, वित्त आयोग, केंद्रीय सतर्कता आयोग और प्रशासनिक सुधार आयोग जैसे आयोग और संस्थाएँ हैं, जो काम करती हैं।

इसके अतिरिक्त, नियामक संस्थाएं जैसे कि भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण, पेंशन कोश नियामक और विकास प्राधिकरण, भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण, विमानन प्राधिकरण और ऐसी अन्य संस्थाएं केंद्रीय स्तर पर काम कर रही हैं।

3.4.2 प्रांतीय सरकार

1919 के अधिनियम द्वारा केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच विषयों को विभाजित किया था। प्रांतों को अपने स्वयं के मामलों का प्रबंधन करने के लिए कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई थी। 1935 के अधिनियम अंतर्गत शक्तियों का और अधिक विकेंद्रीकरण हुआ और 1919 अधिनियम की तुलना में प्रांतों को अधिक स्वायत्तता दी गई। 1935 के अधिनियम के दो महत्वपूर्ण पहलू थे। पहला, इसने प्रांतों को कुछ क्षेत्रों में एक विशेष अधिकार दिया और वे केंद्रीय नियंत्रण से मुक्त हो गए थे। दूसरा, प्रांतों के स्तर पर जिम्मेदार सरकार का परिचय देने के लिए औपनिवेशिक सरकार की ओर से उत्सुकता का प्रमाण था। इन प्रयासों के बाद भी, ब्रिटिश शासन एक अत्यधिक केंद्रीकृत शासन था और इस लक्ष्य का समर्थन करने के लिए, ब्रिटिश शासन में एक प्रशासनिक संरचना विकसित की थी।

हमारे देश में संघीय संरचना है। केंद्र, राज्य और स्थानीय स्तर की सरकारें उन विषयों से संबंधित कानून बनाने के लिए उत्तररदायी हैं, जो उनके लिए निर्धारित किए गए हैं। हालाँकि, यहाँ भी, केंद्रीय शासन को अधिक शक्तिशाली माना जाता है।

3.4.3 स्थानीय सरकार की संरचना का विस्तार

औपनिवेशिक सरकार ने एक विस्तृत प्रशासनिक संरचना के साथ देश पर शासन किया, जिसका समर्थन विशाल नौकरशाही तंत्र द्वारा किया गया। देश को प्रांतों, जिलों और तालुकों में विभाजित किया गया था। जिला कलेक्टर की संस्था 1772 में बनाई गई थी।

वह जिला प्रशासन का नेतृत्व करता था और वह सबसे शक्तिशाली अधिकारी था, जिसके अधीन जिला स्तर पर सभी विभागों को रखा गया था। जिला कलेक्टर के मुख्य कार्य कानून व्यवस्था और राजस्व संग्रहण का रखरखाव करना था। कलेक्टर को जिला स्तर पर सरकार के प्रमुख एजेंट, पुलिस प्रशासन का मुखिया और प्रमुख न्यारयाधीश के प्रमुख के रूप में माना जाता था।

कलेक्टर का कार्यालय अभी भी जारी है और जिला प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्थानीय प्रशासन शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में जिला और उससे नीचे के स्तरों पर संचालन करता है। जिला एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में बनाया गया है, जिससे सरकार को लोगों के करीब लाया जा सके। जिला कलेक्टर, जिला प्रशासन का प्रमुख होता है। वह कानून और व्यवस्था बनाए रखने, न्याय का प्रशासन करने, राजस्व एकत्र करने और अपने संबंधित जिले में विकासात्मक कार्यों को करने के लिए उत्तररदायी है।

स्थानीय निकायों को स्वायत्तता और स्वशासन सुनिश्चित करने के लिए अलग–अलग कार्य और धनराशि प्रदान किए जाते हैं। इसमें एक योजना तंत्र और साथ ही अनुदान के लिए एक वित्त आयोग भी है।

स्थानीय स्तर पर स्व–सरकारी संस्थानों की स्थापना, स्थानीय प्रशासन में लोगों के भाग लेने और उनकी स्थानीय समस्याओं को हल करने का अवसर प्रदान कर रही है। इन निकायों की कल्पना प्रत्यक्ष लोकतंत्र के लिए प्रशिक्षण के रूप में की गई थी, जिनको स्थानीय स्व–शासन में 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 के द्वारा बनाए रखा गया है।

3.4.4 कानून का नियम

कानून का नियम का प्रारम्भ ब्रिटिश प्रशासन की एक अन्य मुख्य विशेषता थी। दुनियाभर में 19वीं और 20वीं शताब्दी में उदारवादी विचारों और संस्थानों के प्रसार ने अंग्रेजों को नियम कानून लागू करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कानूनों को संहिताबद्ध किया और प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समान माना।

भारत में एक स्वतंत्र न्यायपालिका है। सुप्रीम कोर्ट न्यायिक प्रणाली में शीर्ष प्राधिकरण है। प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय है और इसके बाद जिला और सत्र न्यायालय, सिविल और आपराधिक मामलों के लिए अलग–अलग संचालन करते हैं। कानून के नियम का दृढ़ता से पालन किया जाता है।

3.4.5 सिविल सेवाएं

भारतीय सिविल सेवा का गठन प्रशासन में दक्षता प्राप्त करने के लिए किया गया था। इसे एक उच्च पेशेवर प्रशिक्षित सिविल सेवा माना जाता था। इस सेवा के सदस्यों ने भारत में ब्रिटिश सत्ता का सार गठित किया। इस सेवा में भर्ती स्वतंत्र प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा की गई थी। 1926 में, सिविल सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करने के लिए संघीय लोक सेवा आयोग बनाया गया था। हमारे पास अखिल भारतीय सेवाओं में प्रवेष के लिए परीक्षा आयोजित करने के लिए केंद्र स्तर पर संघ लोक सेवा आयोग है। हर साल आयोग इस उद्देश्य के लिए प्रवेष परीक्षा आयोजित करता है और संघ के स्तर पर विभिन्न सरकारी संगठनों में नियुक्ति के लिए मेधावी उम्मीदवारों की अंतिम सूची तैयार करता है।

अंग्रेज प्रशासनिक प्रणाली की विशेषताओं को सूचीबद्ध करें, जिसने भारतीय प्रशासन को प्रभावित किया।

3.5 सारांश

जैसा कि हम जानते हैं, कैसे व्यावसायियों और व्यापारियों के एक संघ, जिन्होंने व्याापारिक गतिविधियों के लिए दुनिया का पता लगाया, 1600 ई0 में व्यापारिक संबंधों को पूरा करने के लिए भारत आए। एक विषुद्ध रूप से वाणिज्यिक निगम के रूप में आये हुए, इन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी का नाम ग्रहण किया। समय बीतने के साथ, कंपनी ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर नियंत्रण कर लिया। 1857 के स्वयतंत्रता संग्राम के बाद, कंपनी और देश के संपूर्ण प्रशासन की शक्ति और अधिकार को ब्रिटिश क्राउन ने अपने अधिकार में ले लिया था। अंग्रेज सरकार ने 1858–1935 के शासन के दौरान, भारतीय परिषद अधिनियम 1861 और 1892, मॉर्ले मिंटो सुधार, 1909, मांटेग्यू–चेल्म्सफोर्ड सुधार 1919, और भारत सरकार अधिनियम 1935 के रूप में सुधारों की षुरुआत की। संघीय विषयों, प्रांतीय विषयों और समवर्ती विषयों के रूप में वर्गीकृत किए गए विषयों की तीन सूचियां होने की ऐतिहासिक उपलब्धियां लोक सेवकों के चयन के लिए एक स्वायत्त निकाय के रूप में लोक सेवा आयोग, विकेंद्रीकृत स्थानीय स्व–सरकारी इकाइयों, जिला कलेक्टर के कार्यालय और अंग्रेज प्रशासन की ऐसी अन्य विशेषताओं को हमारे द्वारा आज के प्रशासन की प्रणाली में अपनाया गया है।

3.6 संदर्भ लेख

1) Chanda A.K., 1968, Indian Administration, George Allen & Unwin Ltd., London

2) Ganguly, D.K., 1979, Aspects of Ancient Indian Administration, Abhinav Publications, New Delhi

3) Indian Administration, 2013, Dr. B. R. Ambedkar Open University, Hyderabad

4) Indian Administration, 2005, School of Social Sciences, IGNOU New Delhi

5) Johari, J.C., 1977, Indian Government and Politics, Vishal Publications, Delhi

6) Maheswari, S.R., 2001, Indian Administration, Orient Longman, New Delhi

7) Misra B.B., 1970, The Administrative History of India, Oxford University Press, London

8) Robert, P.E., 1952, History of British India under the Company and the Crown, Oxford, University Press, London

9) Thomson, Edward and Garratt G.R., 1958, Rise and Fulfillment of British Rule in India, Central Book Depot, Allahabad

इकाई 4 1947 के पश्चात् भारतीय प्रशासन में निरंतरता एवं परिवर्तन

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारतीय प्रशासन को चुनौती

4.3 भारतीय प्रशासनः ब्रिटिश शासन की विरासत

- 4.3.1 विभागीय संगठन
- 4.3.2 सार्वजनिक सेवाएँ
- 4.3.3 लोक सेवा आयोग
- 4.3.4 जिला प्रशासन
- 4.3.5 स्थानीय सरकार
- 4.3.6 वित्तीय प्रशासन

4.4 भारतीय प्रशासन में परिवर्तन

- 4.4.1 विकास एवं कल्याण
- 4.4.2 प्रशासन में सार्वजनिक भागीदारी
- 4.4.3 इलेक्ट्रोनिक शासन

4.5 सारांश

4.6 संदर्भ लेख

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगेः

- ब्रिटिश शासन की विरासत और इसकी निरंतरता के कारणों की व्याख्या करने में;
- स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन में लाए गए परिवर्तनों की चर्चा करने में।

4.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत के प्रशासन पर ब्रिटिश प्रशासन का प्रभाव रहा है। ब्रिटिश शासन की विरासत स्वाभाविक और स्पष्ट रही है। इस इकाई में, हम ब्रिटिश शासन की विरासत को उजागर करने का प्रयास करेंगे और साथ ही साथ इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन में क्या-क्या परिवर्तन किए गए हैं।

4.2 भारतीय प्रशासन को चुनौती

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद, भारतीय प्रशासन को कई संकटों का सामना करना पड़ा, जिनमें से एक, शरणार्थियों के भारत आगमन का था। भारत-पाकिस्तान विभाजन और शरणार्थियों के आगमन के कारण भारत में सांप्रदायिक दंगों का माहौल पनप गया और भारतीय प्रशासन के सामने एक बड़ी चुनौती आ खड़ी हुई।

प्रशासन के अधिकांश संवर्ग पद खाली हो गए क्योंकि बड़ी संख्या में युरोपीय कार्मिकों ने देश छोड़ दिया और मुस्लिम सिविल सेवकों ने त्यागपत्र दे दिया। श्री राम माहेश्वरी के अनुसार, 1945 और 1947 में सिविल सेवा में सम्मिलित कार्मिकों की संख्या, जो 1064 के आसपास थी, वही स्वतंत्रता के पश्चात् तुरंत घटकर 422 हो गयी।

चालीसवें दशक में अकाल के कारण खाद्यान्नों की मूल्य वृद्धि के साथ-साथ इसकी आपूर्ति की भारी कमी के कारण, प्रशासन पर एक अनुचित दबाव बन गया ताकि वे इस संकट को प्रबंधित कर सके। खाद्यान्नों की आपूर्ति और वितरण को विनियमित करने के लिए राशनिंग शुरू की गई थी। इससे प्रशासनिक व्यवस्था पर एक बोझ और बढ़ गया। राशनिंग की शुरूआत करने के कारण अतिरिक्त काम की वृद्धि हुई और इस काम के निपटारे के लिए महसूस किया गया कि तत्काल ही बड़े पैमाने पर सार्वजनिक कार्मिकों के विभिन्न पदों पर भर्ती की आवश्यकता है। चुंकि यह व्यवस्था अत्यधिक शीघ्र समय में की जानी थी इसलिए मौजूदा परिस्थितियों में नई भर्ती हुए लोगों को कोई बुनियादी प्रशिक्षण नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप सार्वजनिक प्रशासन में भ्रष्टाचार का जन्म हुआ।

जब अंग्रेजों ने देश छोड़ा, तो पूरा देश स्वतः ही भारतीय संघ का हिस्सा बन गया। लेकिन कुछ रियासतों (संख्या में 600 से अधिक) के अधीन प्रदेश स्वतंत्र भारत के क्षेत्र से बाहर रहें। इन प्रदेशों के एकीकरण के कार्य में प्रशासनिक व्यवस्था अब लग गई थी।

इस प्रकार, स्वतंत्रता के बाद, भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था एक तरह के परीक्षण के समय से गुजर चुकी थी। इसने कई चुनौतियों और संकट भरी परिस्थितियों का सामना किया। इस प्रशासन को दृढ़ता के साथ अपनी स्थिरता कायम रखनी पड़ी, जिससे यह न केवल विभाजन के कारण हुए तनाव का सामना कर पाया बल्कि अन्य प्रमुख समस्याओं का भी सामना कर सका- जिन समस्याओं की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

4.3 भारतीय प्रशासनः ब्रिटिश शासन की विरासत

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक संरचना भारत में ब्रिटिश शासन की देन है। स्वतंत्र भारत के प्रशासनिक व्यवस्था का सरकारी ढाँचा अंग्रेजों से विरासत में मिला है। सही शब्दों में कहा जाए तो, इस ढाँचे का विकास अंग्रेजों ने ही किया था और संघीय सरकार के महत्व को उजागर किया था। अखिल भारतीय सेवाएँ, सिविल सेवा भर्ती, प्रशासनिक प्रशिक्षण, सचिवालय प्रणाली, कार्यालय प्रक्रियाएँ, जिला प्रशासन, राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रणाली, कानून व्यवस्था, बजट, लेखा परीक्षण तथा अन्य संरचनात्मक और कार्यात्मक क्षेत्र अंग्रेज प्रशासन की ही देन हैं। ब्रिटिश प्रणाली में इनकी जड़े हैं। यद्यपि, अंग्रेजों ने इस प्रशासनिक व्यवस्था को तैयार अपने साम्राज्य को बनाये रखने और मजबूती देने के लिए किया था; परन्तु उनकी यही संगठनात्मक पहल स्वतंत्रता पश्चात् भारत के लिए उपयोगी सिद्ध हुई।

ब्रिटिश प्रशासन की विशेषताओं के बारे में आगे विस्तार से चर्चा की गई है।

4.3.1 विभागीय संगठन

विभागीय संगठन भारतीय प्रशासन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। विभागों का प्रशासनिक ढाँचा पहले जैसा ही है, इसमें कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं किया गया है। पहले की तरह ही पदसोपान, अभिलेखों का कार्य, और संचार आज भी कार्यरत है। स्वतंत्रता पूर्व विभागों को नियंत्रित करने वाली नियमावली आज भी वही है।

4.3.2 सार्वजनिक सेवायें

भारत को ब्रिटिश शासन ने विरासत में बहुत कुछ दिया है, जिनमें से एक भारतीय सिविल सेवा का निर्माण भी है स्वतंत्रता के बाद इस सेवा का नाम बदलकर भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) रख दिया गया था। यह प्रशासनिक व्यवस्था के लिए एक मजबूत कवच की तरह है। संगठनात्मक संरचना, प्रशासनिक व्यवस्था, कार्यप्रणाली, और लोकाचार ने न केवल सरकारी कामकाज, बल्कि प्रशासनिक संस्कृति को भी प्रभावित किया है। IAS संवर्ग (कैडर) केंद्रीय और राज्य प्रशासन दोनों के कई सामरिक पदों पर नियुक्त किए गए हैं।

4.3.3 लोक सेवा आयोग

ब्रिटिश शासन का एक और योगदान रहा है, जो कि प्रतियोगी परीक्षाओं को लेकर है, जिनका आयोजन स्वतंत्र एजेंसी द्वारा किया जाता था। 1854 में मैकाले रिपोर्ट प्रस्तुत होने के साथ, पहली बार भारतीय भूमि पर अंकुरित एक योग्यता आधारित सिविल सेवा का विचार उपजा। 1926 में संघीय (Federal) लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी, जिसका मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना था कि मेधावी सिविल सेवकों का चुनाव निश्पक्ष रूप से हो। 26 जनवरी 1950 को भारत ने एक नए संविधान को लागू किया जिसके अंतर्गत पुराने आयोगों को संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) में परिवर्तित कर दिया गया। संविधान के लेखकों ने न केवल इसे एक संवैधानिक स्थिति के साथ निहित किया बल्कि इसकी स्वतंत्रता बनाये रखने के लिए इसे विस्तृत सुरक्षा उपाय भी प्रदान किये, जिससे ये योग्यता धारक कर्मिकों की प्रणाली को बनाये रखने में सक्षम हो।

4.3.4 जिला प्रशासन

जिला, आज भी एक ऐसी प्रशासनिक इकाई है, जिसकी बढ़ती हुई महत्ता है। जिला प्रशासन का प्रमुख कलेक्टर होता है। हालांकि वर्तमान में, जिले में कार्यप्रणाली की सीमा दुगुने से अधिक हो गयी है। इस कारण कलेक्टर को कानून और व्यवस्था के रखरखाव और राजस्व संग्रहण जैसे विनियामक कार्यों के अतिरिक्त विकासात्मक कार्यों को भी करना होता है।

4.3.5 स्थानीय सरकार

स्थानीय सरकार भी ब्रिटिश प्रशासन प्रणाली की ही देन है जो आज भी कार्यरत है। लार्ड रिपन, जिन्होंने भारत में स्थानीय स्वशासन की शुरूआत की थी, उन्हें भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक कहा जाता है। आजादी से पहले से मौजूद स्थानीय सरकारी संस्थानों को संघटित किया गया और लोगों की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये स्थानीय संस्थान बनाये गये। हर राज्य के लिए यह कानून पारित किया गया कि शहरी क्षेत्रों में नगर निगम और नगर पालिकाओं और ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों की व्यवस्था होगी।

4.3.6 वित्तीय प्रशासन

ब्रिटिश प्रशासन ने दुरूस्त वित्तीय प्रशासन के लिए कुछ संस्थाएँ बनाई, जो इस प्रकार हैं- नियंत्रण और महालेखा परीक्षक (C&AG), लोक लेखा समिति, रिजर्व बैंक, बजट प्रणाली, आदि। विवेकपूर्ण वित्तीय व्यवस्था और उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए ये संस्थान अभी भी सरकार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

अब हम भारतीय शासन प्रणाली के उन नये बदलावों पर चर्चा करेंगे, जो भारतीय संविधान द्वारा लाये गये।

4.4 भारतीय प्रशासन में परिवर्तन

26 जनवरी 1950 को एक नया संविधान लागू हुआ और इसका उद्देश्य और स्वभाव ब्रिटिश शासन के तहत प्रचलित उद्देश्य और स्वभाव से काफी अलग था। नए संविधान ने देश में संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना की। संघ और राज्य सरकारों के साथ संघीय शासन स्थापित किया गया था। संघ और राज्य स्तर पर लोक सेवा आयोगों ने मैधावी लोक सेवकों का चयन सुनिश्चित किया। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत और नागरिकों के लिए मौलिक अधिकार और मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किये गये। इस तरह के प्रावधानों ने देश में सार्वजनिक प्रशासन की जिम्मेदारियों को बढ़ा दिया।

अब हम उन क्षेत्रों पर ध्यान देंगे, जो स्वतन्त्र भारत के प्रशासन के लिए नए परिवर्तनों के साथ–साथ अधिक जिम्मेदारियों को लेकर आये।

4.4.1 विकास एवं कल्याण

ब्रिटिश शासन के तहत, व्यापार और व्यावसायिक गतिविधियों ने प्रशासन को इस तरह से प्रेरित किया जिससे डाक-तार, बंदरगाहों और राजमार्गों, बैंकिंग और बीमा आदि का उदभव हुआ। शिक्षा को भी प्राथमिकता दी गई। प्राथमिक स्तर पर स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाएँ मिलने लगीं। प्रथम विश्व युद्ध उपरान्त औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की गई। हालाँकि, लोगों के विकास और कल्याण को दूसरी प्राथमिकता पर रखा गया।

जब भारत औपनिवेशिक शासन से मुक्त हो गया, तो भारत का संविधान नए स्वतन्त्र देश के लिए लिखा गया। हमारे संविधान की प्रस्तावना में हर नागरिक को सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक न्याय देने; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, और पूजा की स्वतंत्रता देने; स्थिति और अवसर की समानता देने; और बंधुता, जिससे राष्ट्र की संप्रभुता और अखंडता व व्यक्तिगत गरिमा को सुनिश्चित करने को अंर्तनिहित किया गया है। राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का उल्लेख करते हुए संविधान के चौथे खंड (Part IV) में कहा गया है कि उपरोक्त विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए ये तत्व सरकार को नीति निर्माण व क्रियान्वयन में दिशा–निर्देश देंगे। इन निर्देश तत्वों के अंतर्गत राज्य को नागरिकों के लिए स्थिति, सुविधाओं, और अवसरों व आय में असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करना है। पुरूषों और महिलाओं दोनों को अजीविका का समान अधिकार होगा। राज्यों को यह भी निर्देशित किया गया है कि समान काम के लिए समान वेतन उपलब्ध कराया जाएगा। बच्चों और युवाओं के नैतिक, मानसिक, शारीरिक, और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रावधान किया जाएगा। न्याय में समानता और मुफ्त कानूनी सहायता दिलाने का भी निर्देश दिया गया है। रोजगार व शिक्षा का अधिकार व बुढ़ापे में सरकारी सहायता आदि राज्य की नीतियों में मार्गदर्शक बिंदु होंगे।

4.4.2 प्रशासन में सार्वजनिक भागीदारी

1950 दशक के अंत में, पंचायती राज संस्था, ग्रामीण विकास प्रशासन में ग्रामीण लोगों की भागीदारी का सबसे महत्वपूर्ण साधन रहा है। सामुदायिक विकास इस लोकप्रिय भागीदारी का पहला चरण था। 73वें सांविधानिक संशोधन अधिनियम, सूचना का अधिकार, सोशल

ऑडिट, नागरिक अधिकार पत्र, शिकायत निवारण मशीनरी द्वारा लोकप्रिय भागीदारी को सुनिश्चित किया गया है।

4.4.3 इलेक्ट्रॉनिक शासन

सार्वजनिक क्षेत्र व उपक्रमों में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के एप्लीकेशन व हार्डवेयर/सॉफ्टवेयर घटकों का प्रयोग इलेक्ट्रॉनिक शासन कहलाता है। इसके कारण संगठन के अंतर्गत पारम्परिक प्रशासनिक पद्धतियों और प्रणालियों का डिजीटल रूपान्तरण हुआ है। साथ ही, सार्वजनिक सेवाओं प्रदान करने में भी डिजीटल रूप से प्रभाविकता और कुशलता बढ़ी है। नागरिक सूचना व संचार प्रौद्योगिकी द्वारा शासन में भी भाग ले सकते हैं।

4.5 सारांश

जब से देश स्वतंत्र हुआ, तब से भारतीय प्रशासन में अंग्रेजी विरासत को पाया गया है। विभागीय संगठन, सार्वजनिक सेवायें, लोक सेवा आयोग, जिला कलेक्टर, रिजर्व बैंक, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक और इस तरह के अन्य संगठन अंग्रेज काल से अपनाए गए हैं।

सूचना का अधिकार, स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ, महिलाओं की भागीदारी, नागरिकों के अधिकार-पत्र, सामाजिक लेखा-परीक्षण, व सूचना व संचार प्रौद्योगिकी सुशासन के लक्षण हैं, जो आज भारत के लोगों के लिए उपलब्ध हैं।

4.6 संदर्भ लेख

1) Basu, D.D., 1988, Constitutional Law of India, Prentice Hall of India Private Limited, New Delhi

2) Chanda, Asoka, 1967, Indian Administration, George Allen and Unwin Ltd, London

3) Indian Administration, 2013, Dr. B. R. Ambedkar Open University, Hyderabad

4) Indian Administration, BPAE-102, School of Social Sciences, IGNOU, New Delhi

5) Maheswari, S.R., 2001, Indian Administration, Orient Longman, New Delhi

6) Prasad, Bishwanath, 1968, The Indian Administrative Service, S. Chand & Co., Delhi